पंद्रह अगस्तके बाद

[आज़ादी और बादकी समस्याओंपर विचार]

१५ अगस्त १९४७ से २९ जनवरी १९४८ तकके

गांधीजीके लेख

१९५०

सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार

मूल्य
अजिल्द डेढ़ रुपया
सजिल्द दो रुपये

मुद्रक
कृष्ण प्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

इस पुस्तकमें गांधीजीके १५ अगस्त १९४७ से लेकर २९ जनवरी ९४८, यानी अंतिम समयतकके लेखोंका संग्रह है। इन लेखोंमें गांधी-ाने आजादीके साथ-साथ देशमें पैदा होनेवाली स्थितिपर तथा अन्य नेक महत्वपूर्ण समस्याओंपर अपने विचार प्रकट किए हैं। बापूकी तिम रचना भी, जिसमें उन्होंने कांग्रेसके भावी रूपको सामने रखकर सके विधानकी रूप-रेखा प्रस्तुत की थी, इस पुस्तकमें सम्मिलित कर दी ई है।

एक प्रकारसे यह पुस्तक १५ अगस्त १९४७ से लेकर बापूके निर्वाण-कके समयका इतिहास है।

पुस्तककी सामग्री 'हरिजन' पत्रोंसे इकट्ठी की गई है, जिसके लिए न 'नवजीवन ट्रस्ट'के आभारी हैं।

—मंत्री

विषय-सूची

पंद्रह अगस्तके बाद

पंद्रह अगस्तके बाद

: १ :

पंद्रह अगस्तका उत्सव

मैंने १५ अगस्तको लोगोंसे उपवास करने, प्रार्थना करने और चरखा चलानेकी बात कही है। लोग कहते हैं, "यह क्या है? क्या यह रंज मनानेकी निशानी नहीं है?" लेकिन ऐसा नहीं है। दुःखका कारण यह है कि देशके दो टुकड़े हो गए हैं; लेकिन ब्रिटिश हुकूमत हिंदुस्तान छोड़ रही है, इसलिए खुशी मनानेका कारण भी है। आज उपवास रखकर और प्रार्थना करके अपने आपको पवित्र बनानेका हमारे पास बहुत बड़ा कारण है। ६ अप्रैल, १९१९के दिन पूरी-पूरी खुशी मनानेका कारण मौजूद था, जब कि सारे देशमें जागरणकी लहर फैल गई थी और हिंदू-मुसलमान और दूसरे लोग बिना किसी भेद-भाव या शक-शुबहेके आपसमें प्रेमसे मिलते थे। लेकिन उस दिन भी मैंने लोगोंको प्रार्थना करके, उपवास रखकर और चरखा चलाकर उत्सव मनानेकी सलाह दी थी। आज तो हमारे लिए अपने-आपको भगवानके सामने झुकानेका बहुत ही ज्यादा बड़ा कारण मौजूद है, क्योंकि आज भाई-भाई आपसमें लड़ रहे हैं, खाने और कपड़ेकी भयंकर तंगी है, और देशके नेताओंपर इतनी बड़ी जिम्मेदारीका बोझ आ पड़ा है कि जिसके नीचे भगवानकी कृपाके बिना मजबूत-से-मजबूत आदमीकी कमर भी टूट सकती है।

कुछ लोग १५ अगस्तके दिन काले झंडे दिखानेका विचार कर रहे हैं। मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता। उस दिन मातम मनानेका कोई कारण नहीं है।

मैंने सुना है कि लोग खादी-भंडारोंके पुराने झंडे नहीं खरीदना चाहते और नई बनावटके झंडोंकी मांग करते हैं। नया झंडा भी शुद्ध खादीका ही होगा। जबतक पुराने झंडे बिक न जायं तबतक खादी-भंडारोंको नए झंडे बेचनेसे इन्कार कर देना चाहिए। अगर लोग चरखेके पीछे रहनेवाली सच्ची भावनाको समझ लें तो वे खादी-भंडारोंके—जो गरीबोंकी जायदाद हैं—पास एक भी पुराना झंडा होगा तबतक उसे खरीदनेमें ही अपनी इज्जत और शान समझेंगे।

नई दिल्ली, २८-७-'४७

: २ :

पंद्रह अगस्तके बाद कांग्रेस

सवाल—१५ अगस्तके बाद हिंदुस्तानके दो राज्योंमें दो कांग्रेसें होंगी या एक ही रहेगी? या कांग्रेसकी जरूरत ही न रह जायगी?

जवाब—मेरे विचारसे ऐसी संस्थाकी आजतक जितनी जरूरत थी उससे कहीं ज्यादा अब बढ़ जायगी। बेशक उसका काम बदल जायगा। अगर कांग्रेसजन नादानीसे दो धर्मोंकी बुनियाद पर दो राष्ट्रोंके सिद्धांत स्वीकार नहीं कर लेते तब तो एक हिंदुस्तानके लिए एक ही कांग्रेस हो सकती है। हिंदुस्तानके

बंटवारेसे अखिल भारतीय संस्थाका बंटवारा नहीं होता—होना भी नहीं चाहिए। हिंदुस्तानके दो सार्वभौम राज्योंमें बंट जानेसे उसके दो राष्ट्र नहीं हो जाते। मान लीजिए कि एक या ज्यादा रियासतें दोनों राज्योंसे बाहर रहती हैं, तो क्या कांग्रेस उन्हें और उनके लोगोंको राष्ट्रीय कांग्रेससे बाहर कर देगी? क्या वे कांग्रेससे यह मांग नहीं करेंगे कि वह उनकी तरफ विशेष ध्यान दे और उनकी विशेष परवा करे? यह जरूर है कि अब पहलेसे ज्यादा पेचीदा सवाल खड़े होंगे। उनमेंसे कुछको हल करना मुश्किल भी हो सकता है; लेकिन कांग्रेसके दो टुकड़े करनेका यह कोई कारण नहीं होगा। इसके लिए कांग्रेसको अब तककी अपेक्षा ज्यादा बड़ी राजनीति, ज्यादा गहरे विचार और ज्यादा ठंडे दिमागसे फैसला करनेकी जरूरत होगी। हमें पहलेसे ही लाचार बना देनेवाली मुश्किलोंका विचार नहीं करना चाहिए। आजतक जो बुराइयां हो चुकीं वे काफी हैं।

सवाल—क्या कांग्रेस अब सांप्रदायिक संस्था बन जायगी? आज इसके लिए बार-बार मांग की जा रही है। अब जब कि मुसलमान अपने आपको परदेशी समझते हैं तब हम भी अपने यूनियनको हिंदू हिंदुस्तान कहकर क्यों न पुकारें और उसपर हिंदू-धर्मकी अमिट छाप क्यों न लगावें?

जवाब—यह सवाल पूछनेवालेके घोर अज्ञानको जाहिर करता है। कांग्रेस कभी हिंदू-संस्था नहीं बन सकती। जो उसे हिंदू-संस्था बनाएंगे वे हिंदुस्तान और हिंदू-धर्मके दुश्मन होंगे। हिंदुस्तान करोड़ों लोगोंका राष्ट्र है। उनकी आवाज किसीने नहीं सुनी है। अगर कोई दो राष्ट्रके सिद्धांतको मानकर

कांग्रेसको हिंदू-संस्था बनानेपर जोर देते हैं तो वे शहरकी शोर-गुल मचानेवाली संस्थाएं ही हैं। हम उनकी आवाजको हिंदुस्तानके लाखों गांवोंके करोड़ों लोगोंकी आवाज समझनेकी गलती न करें। तीसरी बात यह है कि संघके मुसलमानोंने यह जाहिर नहीं किया है कि वे परदेशी हैं। आखीरमें, हिंदुओंकी बहुत-सी कमियोंके बावजूद भी, बिना किसी विरोधके, यह दावा किया जा सकता है कि हिंदू-धर्मने दूसरोंका कभी बहिष्कार नहीं किया। अलग-अलग धर्मोंको माननेवाले लोगोंसे हिंदुस्तान एक और अखंड राष्ट्र बना है। उन सबका हिंदुस्तानके नागरिक होनेका एक-सा हक है। बहुमतवाली जातिको दूसरोंको दबानेका कोई हक नहीं है। तादाद या तलवारकी ताकत सच्चा हक़ नहीं माना जायगा। न्यायसे मिला हुआ हक ही सच्ची ताकत होती है, हालांकि इसके ख़िलाफ भी बहुत-सी मिसालें मिलती हैं।

सवाल—**गैर मुस्लिमोंका पाकिस्तानके झंडेकी तरफ क्या रुख होना चाहिए ?**

जवाब—पाकिस्तानका झंडा अभी बना तो नहीं है। शायद वह मुस्लिम लीगका झंडा ही होगा। अगर पाकिस्तान और इस्लाम एक ही चीज है तो उसका झंडा वही होना चाहिए, जो दुनियाके सारे मुसलमानोंका झंडा है। और जो इस्लामके दुश्मन नहीं, उन सबको उसकी इज्जत करनी चाहिए। मैं इस्लाम, ईसाई-धर्म, हिंदू-धर्म या दूसरे किसी धर्मका ऐसा झंडा नहीं जानता। इतिहासका अच्छा जानकार न होनेके कारण मैं गलती कर सकता हूं। अगर पाकिस्तानका झंडा,

फिर वह किसी भी रंग और बनावटका हो, पाकिस्तानमें रहनेवाले किसी भी धर्मके लोगोंकी एक-सी नुमाइंदगी करता है तो मैं उसे सलामी दूंगा और आपको भी देनी चाहिए। दूसरे शब्दोंमें, दोनों उपनिवेशोंको एक दूसरेके दुश्मन नहीं बनना चाहिए। राष्ट्र-संघ (कामनवेल्थ)के उपनिवेश या डोमिनियन एक दूसरेके दुश्मन नहीं हो सकते। मैं दुःखभरी दिलचस्पीसे देख रहा हूं कि दक्षिण अफ्रीकाका उपनिवेश हिंदुस्तानके दो उपनिवेशोंके साथ कैसा बरताव करता है। क्या दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे अब भी हिंदुस्तानियोंसे नफरत कर सकते हैं? क्या दक्षिणी अफ्रीकाके यूरोपियन हिंदुस्तानियोंके साथ, रेलके एक ही डिब्बेमें सफर करनेसे भी, सिर्फ इसलिए इन्कार कर सकेंगे कि वे हिंदुस्तानी हैं?

नई दिल्ली, २९-७-४७

: ३ :

सच्चा इस्लाम

एक मुसलमान भाईने जो पत्र मेरे पास भेजा था, उसमेंसे निजी जिक्रको छोड़कर बाकी मैं नीचे दे रहा हूं :

"इस्लाम सारी दुनियाका धर्म है। उसका महान् संदेश है सत्यके लिए कोशिश करना और उसे पहचानना। मौलाना जलालुद्दीन रूमीकी नीचे दी गई कवितासे यह साफ मालूम होता है कि खलीफा अली जैसे महात्माओंको भी सत्यको पानेके लिए कितनी बड़ी कोशिश करनी पड़ती है :

१. पैगम्बर साहबने अलीसे कहा—'ऐ अली, तुम खुदाके शेर हो, सबसे बड़े बहादुर हो। फिर भी तुम अपनी शेर-जैसी बहादुरी और ताकतके भरोसे मत बैठो।

(लेकिन) तुम सत्यके पेड़के नीचे आसरा लो और जिसकी बुद्धि ज्ञानमय हो, उस आदमीकी शरणमें जाओ।

रूढ़िवादी धर्मको माननेवाले पुराणपंथी आदमीके रास्ते चलकर तुम सत्यको नहीं पा सकोगे।

धरतीपर उस पुरुषकी छाया काफके परवत जैसी है।
उसकी आत्मा ऊंचे आसमानमें उड़नेवाले गरुड़ जैसी है।

क़यामतके दिनतक मैं उसका गुणगान किया करूं, तो भी वह अधूरा ही रहेगा।

याद रखो, वह सत्य मनुष्यकी शक्लमें छिपा हुआ है।
और, एक अल्ला ही उस सत्यको जाननेवाला है।

२. तुम नाम और रूपको छोड़कर गुणोंको पहचाननेकी कोशिश करो, जिससे ये गुण तुम्हें दुनियाके सारतक ले जायं।

इस दुनियाके संप्रदायों या फिरकोंके भेद उनके नामोंसे पैदा हुए हैं; लेकिन जब ये सारे संप्रदाय दुनियाके सारतक पहुंचते हैं तभी उनके माननेवाले खुदाकी शांति पाते हैं।

आज मुस्लिम हिंदुस्तानके बारेमें सबसे बड़े दुःखकी बात यह है कि वह नामोंके जालमें फँस गया है। उसने इस्लामकी सच्ची सीखको भुला दिया है। इस सीखको मानकर ही वह सत्यको पहचान सकता था।

हिंदुस्तानके रहनेवाले इस्लामके अनुयायी अपनी-अपनी मरजीके मुताबिक काम करते हैं और फिर भी यह कहते हैं कि हम इस्लामके आदेशके माफ़िक काम करते हैं; लेकिन उन्हें इस बातका ध्यान नहीं रहता कि :

चांद अपनी चांदनी फैलाकर दुनियाको ठंडक देता है और कुत्ते उसके सामने भूंकते हैं :

हर प्राणी अपने स्वभावके मुताविक काम करता है और हर प्राणी और हर चीजको खुदाके हुक्मसे उसके लायक काम मिला हुआ है ।

सनातन समयकी सौगंध खाकर मैं कहता हूं कि जो अच्छे कामोंमें विश्वास रखते हैं और उन्हें करते हैं और जो सत्य व अहिंसाका प्रचार करते हैं, उनके सिवा दूसरे सारे आदमी अपना सब कुछ खो देते हैं ।

इसलिए मैं आपसे विनती करता हूं कि जब आप मुसलमानोंके कामोंकी चर्चा करें तब मेहरवानी करके इस्लामका जिक्र न कीजिए, क्योंकि आज ये दोनों एक-दूसरेसे बहुत दूर हो गए हैं ।"

काश, यह इस्लाम पाकिस्तानके कामोंमें दिखाई दे और इस खत लिखनेवाले भाईका उलाहना गलत साबित किया जा सके !

नई दिल्ली, २०–७–'४७

: ४ :

जिंदा दफनाया ?

एक हैदराबादी भाई लिखते हैं :—

"गांधीको जिंदा दफनाया जा रहा है ।

गांधीके माने गांधीके उसूल । इन्हीं उसूलोंसे हम इस दरजेपर पहुंचे हैं; लेकिन जिस सीढ़ीसे हम ऊपर उठे, उसीको तोड़-ताड़कर फेंक दिया

जा रहा है। यह काम वे लोग कर रहे हैं जो गांधीके सबसे बड़े अनुयायी भी कहलाते हैं। हिंदू-मुस्लिम एकता, हिंदुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग—ये सब खतम कर दिए गए हैं। फिर भी जो इनकी बातें करते हैं, वे या तो धोखेमें हैं, या जान-बूझकर धोखा दे रहे हैं।"

मुझे जिंदा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। 'दफनाया गया' ऐसे तो मैं कैसे कबूल करूं? मेरे सबसे बड़े अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन? मेरा तो एक ही अनुयायी है—वह मैं या सब हिंदी। मेरे अनुयायी वे ही हैं, जो ऊपरकी बातें मानते हैं। मेरी उम्मीद तो अब भी रहती है कि करोड़ों देहाती ये चारों चीजें मानते हैं। फिर भी इस इल्जाम में काफी सचाई है। लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि मुस्लिमलीगी भाई यह कहने लगे हैं कि हम सब भाई-भाई हैं। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सोंके शहरी हैं। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नहीं मानी जायगी। कोई एक हुकूमत शुरू करे तभी ऐसा हो सकता है। हम आशा रखें और ऐसा बरताव करें जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखें कि दोनोंमें-से कोई भी खद्दर नहीं छोड़ेंगे, देहाती उद्योग-धन्धोंको नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। हिंदुस्तानीके बारेमें लिख चुका हूं। उसे कैसे छोड़ा जाय? मुसलमान जिनकी मातृभाषा उर्दू है, उर्दू कैसे छोड़ें? उन्हें अपनी उर्दू आसान करनी होगी और हिंदुओंको, जो उर्दू नहीं जानते, अपनी हिंदी आसान करनी होगी। तभी दोनों एक दूसरेको समझ सकेंगे। सबसे बड़ी बात तो लेखकने छोड़ ही दी है। हिंदुओंको अस्पृश्यता और जात-

पांत छोड़कर शुद्ध वनना होगा। मुसलमानोंको हिंदुओंकी नफरत छोड़कर साफ होना होगा।

श्रीनगर, ३-८-'४७

: ५ :

तिरंगा झंडा

जिन हैदरावादी भाईने यह लिखा है कि 'गांधीको जिंदा दफनाया जा रहा है' वे ही आगे चलकर झंडेके वारेमें लिखते हैं :--

"तिरंगा झंडा हमारे आंदोलनका प्रतीक था। उससे चरखा हटाकर सवसे वड़ा अपराध किया गया है। नए चक्रका या पुराने अशोकके चक्रका गांधीके चरखेसे कोई संवंध नहीं है, वलिक वे परस्पर विरोधी हैं। गांधीका चरखा धर्मसे, मजहवसे परे है, मगर नया चक्र हिंदू-धर्मका प्रतीक है। गांधीका चरखा 'अहिंसक परिश्रम' का प्रतीक है, मगर नया चक्र 'सुदर्शन चक्र' का प्रतीक है (ऐसा मुंशीजी अपने भाषणमें कहते हैं)। सुदर्शन चक्र हिंसाका प्रतीक है। इस प्रकार नए झंडेसे हिंदू-धर्मके नामपर राष्ट्रकी हिंसावृत्तिको उत्तेजन मिलेगा। उस दिशामें यह जान-वूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। यह पाकिस्तानको मिलानेका नहीं, वलिक पाकिस्तानको पक्का करनेका तरीका है।"

मुंशीजीने जो कहा उसे मैंने पढ़ा नहीं है। अगर झंडेका वही अर्थ है, जो ऊपर वताया गया है तो राष्ट्रीय झंडा गया। अशोकका चक्र किसी भी हालतमें हिंसाका प्रतीक नहीं वन सकता। महाराज अशोक वौद्ध थे, अहिंसाके पुजारी थे।

सुदर्शन चक्रका तो झंडेके चक्रके साथ ताल्लुक नहीं हो सकता। सुदर्शन चक्र मेरी दृष्टिसे अहिंसाकी निशानी है। लेकिन यह मेरी ही बात हुई। साधारण रूपसे सुदर्शन चक्र हिंसाका साधन माना जाता है। इसमें शक नहीं कि नए झंडेसे और उसपर जो बहस हुई है, उससे यह कहा जा सकता है कि अगरचे चरखेका मूल्य गया नहीं है, फिर भी कम तो जरूर हुआ है। अशोक-चक्र और सूत कातनेका चरखा एक है या नहीं, यह तो आखिरकार लोगोंके आचारपर निर्भर रहेगा।

श्रीनगर, ३-८-'४७

: ६ :

चार सवाल

श्रीनगरमें मुझे लाला किशोरीलालके बंगलेमें ठहराया गया था। वहां मैं तीन दिन रहा। इस दरमियान मैंने लालाजीके कंपाउंडमें प्रार्थना तो की, मगर कोई भाषण नहीं दिया। दिल्ली छोड़नेके पहले मैंने यह ऐलान कर दिया था कि काश्मीरमें मैं कोई भाषण नहीं दूंगा। मगर प्रार्थनामें शामिल होनेवाले भाइयोंमेंसे कुछने मुझसे सवाल पूछे। उनमेंसे एक सवाल यह था—

"पिछली शामको मैं आपकी प्रार्थना-सभामें हाजिर था जिसमें आपने दूसरी जातियोंकी दो प्रार्थनाएं पढ़ी थीं। क्या आप बतलानेकी

कृपा करेंगे कि ऐसा करनेमें आपका क्या ख्याल है? और मजहब या धर्मसे आपका क्या मतलब है?"

जैसा कि मैं आजसे पहले भी बतला चुका हूं---रैहाना तैयबजीकी सलाहसे कुछ वरस पहले कुरानकी आयतें मेरी प्रार्थनामें शामिल की गई थीं। उन दिनों रैहानाबहन सेवाग्राम-आश्रममें रहती थीं। दूसरी प्रार्थना, डॉ० गिल्डरकी प्रेरणासे पारसी प्रार्थनाओंमेंसे ली गई है। आगाखां-महलमें नजरबंद-की हालतमें रहते हुए मैंने जब अपना उपवास तोड़ा तब डाक्टर साहबने पारसी धर्मकी प्रार्थनाएं पढ़ी थीं। मेरी रायमें इनको शामिल कर लेनेसे प्रार्थनाका महत्त्व बढ़ा है। अब वह पहलेसे ज्यादा लोगोंके दिलोंतक पहुंचती है। इससे हिंदू-धर्मकी विशालता और सहिष्णुता जाहिर होती है। सवाल पूछने-वाले भाईको यह भी पूछना चाहिए था कि प्रार्थनाकी शुरुआत जापानी भाषामें गाई जानेवाली बौद्ध प्रार्थनासे क्यों होती है? इस बौद्ध प्रार्थनाके पीछे, उसकी पाकीज़गीके अनुकूल ही एक इतिहास है। जब एक भले जापानी साधु सेवाग्राम-आश्रममें ठहरे हुए थे तब रोज सवेरे इस बौद्ध प्रार्थनासे सारा सेवाग्राम गूंजता था। ये जापानी संत अपने मौन और गौरवभरे स्वभावकी वजहसे सारे आश्रमवासियोंके प्यारे बन गए थे।

जम्मू, ५-८-'४७

उन भाईका दूसरा सवाल यह था---

"लार्ड माउंटबेटनको पहला गवर्नर जनरल क्यों चुना गया?"

जहांतक मेरा ख्याल है, सवाल पूछनेवाले भाईने इसके कारणका सही अंदाज लगाया है। इस ओहदेके लिए इतना

योग्य कोई हिंदुस्तानी नहीं था। हिंदुस्तान आजादी-बिलकी कल्पना करनेमें लार्ड माउंटवेटनका पूरा नहीं तो कुछ हिस्सा जरूर था, इसलिए राष्ट्रके जहाजको तूफानमेंसे सुरक्षित निकाल ले जानेमें वे आरज़ी सरकारके मेम्बरोंको सबसे काबिल आदमी जान पड़े। इसमें अगर एक तरफ अंग्रेजोंकी तारीफकी बात है तो दूसरी तरफ हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञोंको भी इसके लिए उतना ही श्रेय दिया जाना चाहिए, जिन्होंने यह बतला दिया कि तरफदारीसे ऊपर उठनेकी उनमें योग्यता हैं। साथ ही उन्होंने दिखला दिया कि अभीतक जो उनके विरोधी रहे हैं, उनपर भरोसा करनेकी बहादुरी उनमें है।

उनका तीसरा सवाल था—

"आप इस बातके लिए राजी क्यों नहीं होते कि अल्पसंख्यक लोग अपने-अपने उपनिवेशोंको छोड़ दें?"

इस बातपर राजी होनेके लिए मुझे किसीने नहीं कहा। मगर मुझे ऐसी किसी भी हलचलका विरोध करना चाहिए। किसी भी उपनिवेशके बहुसंख्यकोंपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। और अब तो हर हालतमें, जब हिंदुस्तानमें दो सार्वभौम राज बन गए हैं, तब इनमेंसे हर राजको अपने यहां रहनेवाले दूसरे राजके अल्पसंख्यकोंके प्रति उचित व्यवहार की गारंटी देनी होगी। मगर हम उम्मीद करें कि ऐसा मौका कभी नहीं आएगा। मैं भी मानता हूं कि हर एक हकके साथ एक फर्ज जुड़ा हुआ है। ऐसा कोई हक नहीं, जो ठीक तरह अदा किए हुए फर्जसे न निकलता हो।

उन भाईका चौथा सवाल है—

"क्या आप १५ अगस्तको हिंदुस्तानके आज़ाद हो जानेपर देशकी राजनीतिमें भाग लेना छोड़ देंगे ?"

पहली बात तो यह है कि हमें जो आजादी मिल रही है वह राम-राजके नजदीक ले जानेवाली नहीं है। राम-राज तो पहलेकी तरह आज भी हमसे करोड़ों मील दूर है। और फिर करोड़ोंका जीवन ही हर हालतमें मेरी राजनीति है। उसे छोड़नेकी हिम्मत मुझमें नहीं है। उसे छोड़नेका मतलब होगा मेरे जीवनके काम और भगवानको माननेसे इन्कारकरना। यह बहुत संभव है कि १५ अगस्तके बाद मेरी राजनीति कोई दूसरा रास्ता ले ले। लेकिन इसका फैसला तो परिस्थितियां ही करेंगी।

आखिरमें उन्होंने पूछा है—

'आपने बिहारमें काफी काम किया है; लेकिन पंजाबको क्यों भुलाया ?'

इसके जवाबमें मैं इतना ही कह सकता हूं कि मेरे पंजाब न जानेका यह मतलब न लगाया जाय कि मैंने उस सूबेको भुला दिया है। फिर भी यह सवाल बिलकुल ठीक है और कई बार मुझसे पूछा भी गया है। मैंने पूरी ईमानदारीसे इसका यही जवाब दिया है कि न तो मुझे पंजाब जानेके लिए अपनी अंतरात्मासे कोई प्रेरणा मिली और न मेरे सलाहकारोंने मुझे प्रोत्साहन दिया।

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७-८-'४७

: ७ :

हलफनामेका मसविदा

श्री ब्रजलाल नेहरूने 'हरिजन' में छापनेके लिए जो हलफनामेका मसविदा भेजा है, वह नीचे दिया जाता है—

इस हलफनामेपर हिंदुस्तानकी फौजी या गैर-फौजी सरकारी नौकरियोंके सारे मेम्बरोंको, केन्द्रकी, सूबोंकी या स्थानीय नौकरियोंके सारे उम्मीदवारोंको, इन सरकारोंके मातहत दूसरी बड़ी-बड़ी तनखाहोंवाली नौकरियोंके लिए अर्जी करनेवालोंको और धारासभाओंके मेम्बरोंके साथ-साथ विधान-सभाके मेम्बरोंको भी दस्तखत करने होंगे।

मैं ईमानदारीके साथ यह सौगंध लेता हूं कि—

१. मैं हिंदुस्तानी संघका नागरिक हूं, जिसके प्रति हर हालतमें वफादार रहनेका मैं वचन देता हूं।

२. मैं इस उसूलको नहीं मानता कि हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं। मेरी यह राय है कि हिंदुस्तानके सब लोग—फिर वे किसी भी जाति या धर्मके हों—एक ही राष्ट्रके अंग हैं।

३. मैं अपने सारे कामों और भाषणोंमें ऐसी कोशिश करूंगा, जिससे इस पुराने और पवित्र देशके सब लोगोंकी एक-राष्ट्रीयताके विचारको शक्ति मिले।

४. अगर किसी समय मैं इस प्रतिज्ञाको तोड़नेका अपराधी साबित होऊं तो मुझे उस समयकी अपनी किसी भी बड़ी तनखाहकी नौकरी या ओहदेसे हटा दिया जाय।"

इस हलफनामेके शब्दोंमें सुधारकी गुंजाइश हो सकती है; लेकिन अगर हम राजनैतिक मैदानमें बढ़नेवाले रोगसे

मुक्त होना चाहते हैं तो इस मसविदेके भीतर रही भावना सचमुच तारीफके लायक और अपनाने-जैसी है।

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७–८–'४७

: ८ :

विद्यार्थियोंकी कठिनाइयां

सवाल—"आजकल विद्यार्थियोंके तमाम मौजूदा संघोंको एक राष्ट्रीय परिषद्का रूप देने, विद्यार्थियोंके आंदोलनकी बुनियादको फिरसे बदलने और विद्यार्थियोंके एक संयुक्त राष्ट्रीय संघको जन्म देनेकी कोशिश हो रही है। आपकी रायमें इस नए संघका क्या मकसद होना चाहिए? आज देशमें जो नई हालतें पैदा हो गई हैं उनमें इस विद्यार्थी संघको कौनसे काम करने चाहिए?"

जवाब—इसमें कोई शक नहीं कि हिंदू, मुसलमान और दूसरे विद्यार्थियोंका एक राष्ट्रीय संघ होना चाहिए। विद्यार्थी राष्ट्रके भविष्यको बनानेवाले होते हैं। उनका बंटवारा नहीं किया जा सकता। मुझे यह कहते दुःख होता है कि न तो विद्यार्थियोंने खुद अपने लिए कभी यह सोचा और न नेताओंने उन्हें सिर्फ़ अभ्यासमें ही मन लगानेका मौका दिया, ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें। यह सड़ाँद विदेशी हुकूमतके साथ हमारे देशमें शुरू हुई। उस हुकूमतके वारिस बननेवाले हम लोगोंने भी बीते जमानेकी गलतियोंको सुधारनेकी तकलीफ नहीं की। इसके अलावा, अलग-अलग सियासी पार्टियोंने

विद्यार्थियोंको अपने जालमें फँसानेकी कोशिश की, मानों वे मछलियोंके झुंड हों। और विद्यार्थी नादानीसे इस फैलाए हुए जालमें फँस गए।

इसलिए किसी भी विद्यार्थी-संघके लिए यह काम हाथमें लेना बड़ा कठिन है। लेकिन उनमें ऐसे बहादुर लोग जरूर होंगे जो इस जिम्मेदारीसे पीछे नहीं हटेंगे। उनका ध्येय होगा, सब विद्यार्थियोंको एक संस्थाके मातहत संगठित करना। यह काम वे तबतक नहीं कर सकेंगे, जबतक वे सक्रिय राजनीतिसे बिलकुल अलग रहना नहीं सीखेंगे। विद्यार्थीको चाहिए कि वह ऐसे कई सवालोंका अध्ययन करे जिनका हल किया जाना जरूरी हो। उसके काम करनेका वक्त पढ़ाई खतम करनेके बाद ही आता है।

सवाल—"आज विद्यार्थियोंके संघ राष्ट्र-निर्माणके काममें अपनी शक्ति लगानेके बनिस्बत राजनैतिक मामलोंपर प्रस्ताव पास करनेकी तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं। इसका एक कारण यह है कि देशकी राजनैतिक पार्टियां अपना मतलब निकालनेके लिए विद्यार्थियोंकी संस्थाओंको हथियानेकी कोशिश करती रही हैं। हमारी आजकी फूट भी इस राजनैतिक दलबंदीके कारण ही है। इसलिए हम कोई ऐसा तरीका काममें लाना चाहते हैं जिससे विद्यार्थियोंके नए राष्ट्रीय संघमें दलबंदी और फूटके विचार फिर न फैल सकें। क्या आप यह सोचते हैं कि विद्यार्थियोंके संघ राजनीतिसे बिल्कुल अलग रह सकते हैं? अगर नहीं तो आपकी रायमें विद्यार्थीसंघोंको देशकी राजनीतिमें किस हदतक दिलचस्पी लेनी चाहिए?"

जवाब—कुछ हदतक इस सवालका जवाब ऊपर दिया जा

चुका है। विद्यार्थियोंको सक्रिय राजनीतिसे बिलकुल अलग रहना चाहिए। यह देशके एकतरफा विकासकी निशानी है कि तमाम पार्टियोंने अपना मतलब पूरा करनेके लिए ही विद्यार्थियोंका उपयोग किया है। शायद ऐसी हालतमें यह लाज़िमी भी था, जब कि शिक्षाका एकमात्र ध्येय गुलामीसे चिपटे रहनेवाले गुलामोंकी एक जाति पैदा करना था। मुझे उम्मीद है कि यह काम अब खतम हो गया। आज विद्यार्थियोंका पहला काम उस शिक्षापर पूरी तरह विचार करना है जो आजाद राष्ट्रके बच्चोंको दी जानी चाहिए। आजकी शिक्षा तो हरगिज ऐसी नहीं है। मेरे लिए यहां इस सवालपर विचार करना जरूरी नहीं कि वह कैसी होनी चाहिए। मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि विद्यार्थी अपने-आपको इस धोखेमें न रखें कि तालीमके सवाल पर हर पहलूसे सोचना और उसकी योजना बनाना सिर्फ यूनिवर्सिटी सीनेटके मेम्बरोंका ही काम है। उन्हें अपने अंदर सोचने-विचारनेकी शक्ति बढ़ानी चाहिए। यहां मैं इस बातकी सलाह तो दे ही नहीं सकता कि विद्यार्थी हड़तालों या दूसरी इसी तरहकी हलचलोंके दबावसे यह हालत पैदा कर सकते हैं। उन्हें तालीमके मौजूदा ढंगकी रचनात्मक और जाग्रत टीका करके जन-मत तैयार करना चाहिए। सीनेटके मेम्बर पुराने ढंगसे पले-पुसे हैं और शिक्षित हुए हैं। इसलिए वे इस दिशामें जल्दी-जल्दी आगे नहीं बढ़ सकते। लेकिन यह सच है कि जागृति पैदा करके उनसे यह काम कराया जा सकता है।

सवाल—"आज ज्यादातर विद्यार्थी राष्ट्रीय सेवामें दिलचस्पी नहीं

लेते। उनमेंसे बहुतसे तो पश्चिमकी फैशनेबल आदतोंके गुलाम बन रहे हैं और अधिकाधिक संख्यामें शराब पीने वगैरहकी बुरी आदतोंके शिकार हो रहे हैं। आजादीसे किसी विषयपर सोचनेकी न तो उनमें काबलियत है, न इच्छा। हम इन सारी समस्याओंको हल करना चाहते हैं और नौजवानोंमें उच्च चरित्र, निज़ाम और काबलियत पैदा करना चाहते हैं।"

जवाब—इसमें विद्यार्थियोंकी मौजूदा अस्थिर मनोवृत्तिका वर्णन है। जब शांत वातावरण पैदा होगा और विद्यार्थी आंदोलन करना छोड़कर गंभीरतासे अपनी पढ़ाईमें जुट जायंगे तब उनकी यह हालत नहीं रहेगी। विद्यार्थीकी जिंदगीकी जो संन्यासीकी जिंदगीसे तुलना की गई है वह ठीक है। उसे सादा रहन-सहन और ऊंचे विचारकी जीती-जागती मूर्ति होना चाहिए। उसे निज़ाम या अनुशासनका अवतार होना चाहिए। विद्यार्थीका आनंद उसकी पढ़ाईमें है। जब विद्यार्थी अपनी पढ़ाईको लाज़मी टैक्सके रूपमें देखना छोड़ देता है तब वह जरूर उसको सच्चा आनंद देती है। विद्यार्थीके लगातार अधिकाधिक ज्ञान हासिल करते जानेसे बढ़कर उसके लिए दूसरा आनंद और क्या हो सकता है?

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७–८–'४७

: ६ :

घुड़दौड़की लत

नीचे दिया हुआ अंश 'हरिजनबंधु' में छपे एक गुजराती पत्रका सार है—

"वरसातके मौसममें पूनामें घुड़दौड़ होती है। तीन स्पेशल गाड़ियां हर रोज पूना जाती हैं और वापिस आती हैं। और यह तव होता है जव गाड़ियोंमें जगह नहीं मिलती और कामकाजी लोगोंको मुसाफिरोंसे ठसाठस भरी हुई गाड़ियोंमें सफर करना पड़ता है। मुसाफिर अक्सर पायदानोंपर लटके जाते हैं। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी प्राण-घातक दुर्घटनाएं हो जाती हैं। एक वात और भी है, और वह यह कि जव पेट्रोलकी सव जगह कमी है तव अतिरिक्त मोटरगाड़ियां भी वम्वईसे पूना दौड़ती हैं। क्या ये मुसाफिर वम्वईमें अपना हमेशाका राशन नहीं लेते? क्या इनको स्पेशल गाड़ियोंमें और घुड़दौड़के मैदानमें नाश्ता नहीं मिलता?

इसपरसे मेरे मनमें सिविल सर्विसकी जांच करनेकी वात पैदा होती है। जिन लोगोंके वुरे इंतजामकी हम पहले निंदा किया करते थे, क्या वे ही लोग आज देशका राजकाज नहीं चला रहे हैं? हमारी आज क्या हालत हो रही है? हमें जरूरतका अनाज और कपड़ा भी मयस्सर नहीं होता। और हम अपनेको खर्चीले खेल-तमाशोंमें फँसा हुआ पाते हैं!"

मैं अक्सर घुड़दौड़की वुराइयोंके वारेमें लिख चुका हूं। मगर उस वक्त मेरी वातपर कोई ध्यान नहीं देता था। विदेशी शासक इस वुरी आदतको पसंद करते थे और उन्होंने इसे एक किस्मकी अच्छाईका जामा पहना दिया था। मगर अव उस गंदी आदतसे चिपके रहनेकी कोई वजह नहीं है। या कहीं यह तो न हो कि हम विदेशी हुकूमतकी वुराइयोंको तो वनाए रखें और उसकी अच्छाइयां उसके साथ ही खतम हो जाएं?

पत्र लिखनेवाले भाई सिविल सर्विसके वारेमें जो कहते हैं, उसमें वहुत कुछ सचाई है। वह एक ऐसी संस्था है जिसके आत्मा नहीं है। वह अपने मालिकके रंग-ढंगपर चलती है।

इसलिए अगर हमारे नुमाइंदे सचेत रहें और हम उनपर अपना कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए जोर दें तो सिविल सर्विसके जरिए बहुत कुछ काम किया जा सकता है। आलोचना किसी भी जनतंत्रीय सरकारका भोजन है। मगर वह रचनात्मक और समझदारीभरी होनी चाहिए। जन-आंदोलनकी शुरुआतमें कांग्रेस अपनी जिस बुनियादी पवित्रताके लिए मशहूर थी, उसपर ही जनताकी आशा टिकी हुई है। और अगर हमें जिंदा रहना है तो कांग्रेसमें वह पवित्रता फिरसे लौटानी होगी।

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७-८-'४७

: १० :

चमत्कार या संयोग ?

शहीदसाहब सुहरावर्दी और मैं बेलियाघाटाके एक मुस्लिम मंजिलमें साथ-साथ रहते हैं। कहा जाता है कि यहां दंगेमें मुसलमानोंको नुकसान पहुंचा है। हम १३ अगस्त, बुधवारको इस घरमें आए और १४ अगस्तको ऐसा मालूम हुआ मानों यहांके हिंदुओं और मुसलमानोंमें कभी कोई अदावत या दुश्मनी थी ही नहीं। हजारोंकी तादादमें वे एक-दूसरेसे गले मिलने लगे और निडर बनकर उन जगहोंसे गुजरने लगे जिन्हें एक या दूसरी पार्टी खतरनाक समझती थी। सचमुच मुसलमान भाई अपने हिंदू भाइयोंको मसजिदोंमें ले गए और

हिंदू अपने मुसलमान भाइयोंको मंदिरोंमें। दोनोंने एक साथ 'जय हिंद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हों' के नारे लगाए। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, हम एक मुसलमानके घरमें रहते हैं और मुसलमान सेवक और सेविकाएं हमारे सुख-सुभीतोंका ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान रखती हैं। मुसलमान स्वयंसेवक हमारा खाना बनाते हैं। खादी प्रतिष्ठानसे बहुतसे लोग मेरी सेवाके लिए आना चाहते थे, लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। मैंने यह पक्का इरादा कर लिया था कि मुसलमान भाई और बहनें जो कुछ भी सुख-सुभीते हमें दे सकेंगे, उन्हींसे हमें पूरा संतोष मानना चाहिए। और, मुझे यह कहना चाहिए कि अपने इस इरादेसे मुझे ज़रा भी नुकसान नहीं हुआ। मकानके अहातेमें 'जय हिंद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हों' के नारे लगानेवाले अनगिनत हिंदू-मुसलमानोंका तांता बंधा रहता है। मैं तो यहांतक सुनता हूं कि भाईचारेका उत्साह लगातार बढ़ता जा रहा है।

इसे चमत्कार कहा जाय या संयोग ? इसको किसी भी नामसे क्यों न पुकारा जाय यह तो साफ है कि चारों तरफसे इसका जो श्रेय मुझे दिया जाता है उसके लायक मैं नहीं हूं। तब क्या शहीदसाहबको इसका श्रेय है ? उन्हें भी इसका श्रेय नहीं मिलना चाहिए। एकाएक होनेवाला यह भारी फेरफार एक या दो आदमियोंका काम नहीं है। हम तो भगवानके हाथके खिलौने हैं। वह हमें अपने इशारेपर नचाता है। इसलिए आदमी ज्यादा-से-ज्यादा यही कर सकता है कि वह इस नाचमें कोई रुकावट न डाले और अपने भगवानको

इच्छाको अच्छी तरह पूरी करे। इस तरह विचार करनेपर यह कहा जा सकता है कि इस चमत्कारमें भगवानने हम दोनोंको अपना साधन वनाया है। में अपने आपसे यही पूछता हूं कि क्या मेरा वचपनका सपना बुढ़ापेमें पूरा होगा? देखूं क्या होता है।

जो भगवानमें पूरी श्रद्धा रखते हैं उनके लिए न तो यह चमत्कार है और न संयोग। घटनाओंका सिलसिला यह साफ बताता है कि दोनों जातियां, अनजानमें ही, इस भाई-चारेके लिए तैयार की जा रही थीं। इस जगह हम दोनोंके पहुंच जानेसे देखनेवालोंको आनंदसे भरी इस घटनाके लिए हमें श्रेय देनेका मौका मिल गया।

कुछ भी हो, खुशीसे पागल वना देनेवाली ये घटनाएं मुझे खिलाफत आंदोलनके शुरुआतके दिनोंकी याद दिलाती हैं। तव जनतामें भाईचारेकी भावना नए अनुभवके रूपमें फूट पड़ी थी। इसके अलावा, तव हमारे खिलाफत और स्वराजके आदर्श एक-दूसरेसे जुड़े हुए थे। आज उस तरहकी कोई वात नहीं है। हमने आपसी नफरतका जहर पी लिया है। इसलिए भाईचारेका यह अमृत हमें वहुत ज्यादा मीठा लगना चाहिए और उसकी मिठास कभी कम न होनी चाहिए।

आजके नारोंमें हिंदुओं और मुसलमानोंके मुंहसे एक साथ 'हिंदुस्तान-पाकिस्तान जिंदावाद' का स्वर भी सुनाई देता है। मेरे विचारसे यह विलकुल ठीक है। पाकिस्तानको मंजूर करनेका कोई भी कारण क्यों न रहा हो, तीन पार्टियोंने उसे मान लिया है। तव अगर दो पार्टियां एक दूसरेकी

दुश्मन न हों—और यहां तो वे साफ तौरपर एक-दूसरीकी दुश्मन नहीं मालूम होतीं—तो ऊपरका नारा लगानेमें कोई बुराई नहीं है। अगर दोनों जातियां सचमुच दोस्त बन जाएं तो दोनों राज्योंकी लंबी जिंदगीकी कामना न करना बेवफाई होगी।

बेलियाघाटा, १६–८–'४७

: ११ :

हिंदुस्तानी गवर्नर

यहां 'इंडिया' शब्दके मानोंमें हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों शामिल हैं। शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ किया जाय तो हिंदुस्तानसे हिंदुओंका देश और पाकिस्तानसे मुसलमानोंका देश समझा जा सकता है। मेरी रायमें दोनों शब्दोंका ऐसा इस्तेमाल कायदेके खिलाफ है। इसलिए मैंने यहां जान-बूझकर 'हिंदुस्तान' शब्दका इस्तेमाल किया है।

ब्रिटिश जुएसे आजादी दिलानेवाली कांग्रेसका जो खास जलसा १९२०में कलकत्तेमें हुआ था, उसमें खिलाफत-स्वराज-असहयोगका प्रस्ताव पास हुआ था। वह हिंदू और मुसलमान दोनोंके लिए था। उसका मकसद लोगोंमें आत्म-शुद्धिकी भावना पैदा करना था, जिससे अच्छी और बुरी ताकतोंके बीच असहयोग किया जा सके। इसलिए,

१. हिंदुस्तानी गवर्नरको चाहिए कि वह खुद पूरे संयमका

पालन करे और अपने आसपास संयमका वातावरण खड़ा करे। इसके बिना शराब-बंदीके बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता।

२. उसे अपनेमें और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथबुनाईका वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिंदुस्तानके करोड़ों गूंगोंके साथ उसकी एकताकी जाहिरा निशानी हो, 'मेहनत करके रोटी कमाने' की जरूरतका, और संगठित हिंसाके खिलाफ---जिसपर आजका समाज टिका हुआ मालूम होता है---संगठित अहिंसाका जीता-जागता प्रतीक हो।

३. अगर गवर्नरको अच्छी तरह काम करना है तो उसे लोगोंकी निगाहोंसे बचे हुए, फिर भी सबकी पहुंचके लायक, छोटेसे मकानमें रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभावसे ब्रिटिश ताकतको दिखाता था। उसके और उसके लोगोंके लिए सुरक्षित महल बनाया गया था---ऐसा महल जिसमें वह और उसके साम्राज्यको टिकाए रखनेवाले उसके सेवक रह सकें। हिंदुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबों और दुनियाके राज-दूतोंका स्वागत करनेके लिए थोड़ी शान-शौकतवाली इमारतें रख सकते हैं। गवर्नरके मेहमान बननेवाले लोगोंको उसके व्यक्तित्व और आसपासके वातावरणसे 'ईवन अण्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय)---सबके साथ समान बरताव---की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महंगे फर्निचरकी जरूरत नहीं। 'सादा जीवन और ऊंचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह सिर्फ उसके दरवाजेकी ही शोभा न बढ़ाए, बल्कि उसके रोजके जीवनमें भी दिखाई दे।

४. उसके लिए न तो किसी रूपमें छुआछूत हो सकती है

और न जाति, धर्म या रंगका भेद। हिंदुस्तानका नागरिक होनेके नाते उसे सारी दुनियाका नागरिक होना चाहिए। हम पढ़ते हैं कि खलीफा उमर इसी तरह सादगीसे रहते थे, हालांकि उनके चरणोंपर लाखों-करोड़ोंकी दौलत लोटती रहती थी। इसी तरह पुराने जमानेमें राजा जनक रहते थे। इसी सादगीसे ईटनके स्वामी, जैसा कि मैंने उन्हें देखा था, अपने भवनमें ब्रिटिश द्वीपोंके लार्ड और नवाबोंके लड़कोंके बीच रहा करते थे। तब क्या करोड़ों भूखोंके देश हिंदुस्तानके गवर्नर इतनी सादगीसे नहीं रहेंगे?

५. वह जिस प्रांतका गवर्नर होगा, उसकी भाषा और हिंदुस्तानी बोलेगा, जो हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपिमें लिखी जाती है। वह न तो संस्कृत शब्दोंसे भरी हुई हिंदी है और न फारसी शब्दोंसे लदी हुई उर्दू। हिंदुस्तानी दरअसल वह भाषा है, जिसे विंध्याचलके उत्तरमें करोड़ों लोग बोलते हैं।

हिंदुस्तानी गवर्नरमें जो-जो गुण होने चाहिए उनकी यह पूरी सूची नहीं है। यह तो सिर्फ मिसालके तौरपर दी गई है।

हम आशा करें कि वे अंग्रेज भी, जिन्हें हिंदुस्तानी नुमाइंदोंने गवर्नर चुना है और जिन्होंने हिंदुस्तान और उसके करोड़ोंकी वफादारीकी सौगंध ली है, वही सादा जीवन बितानेकी भरसक कोशिश करेंगे, जिसकी हिंदुस्तानी गवर्नरसे आशा की जाती है। वे ब्रिटेनके उन अच्छे-से-अच्छे गुणोंका प्रदर्शन करेंगे, जो वह हिंदुस्तान और दुनियाको दे सकता है।

कलकत्ता, १७–८–'४७

: १२ :

भगवान भला है

भगवान उसी अर्थमें भला नहीं है, जिसमें इन्सान भला है। इन्सान तुलनामें भला है। वह बुरेके बनिस्बत भला ज्यादा है। लेकिन भगवान तो भला-ही-भला है। उसमें बुराईका नाम भी नहीं है। भगवानने इन्सानको अपनी ही तरह बनाया। लेकिन हमारे दुर्भाग्यसे इन्सानने भगवानको अपने-जैसा बना डाला है। इस घमंडसे मनुष्य-जाति दुःखों और कठिनाइयोंके समुद्रमें जा पड़ी है। भगवान सबसे बड़ा रसायन-शास्त्री है। वह जहां मौजूद रहता है, वहां लोहा और कचरा भी खरा सोना बन जाता है। उसी तरह सारी बुराई भलाईमें बदल जाती है।

फिर, भगवान है, लेकिन हमारी तरह नहीं। उसके प्राणी मरनेके लिए ही जीते हैं। लेकिन भगवान तो खुद जीवन हैं। इसलिए भलाई, अपने हर मानीमें, भगवानका गुण नहीं है। भलाई भगवान ही है। भगवानसे अलग जिस भलाईकी कल्पना की जाती है, वह बेजान चीज है और वह तभी-तक टिकती है जबतक उससे हमें फायदा पहुंचता है। यही बात सारे सदाचारोंके बारेमें भी सच है। अगर उन्हें हमारे जीवनमें जिंदा रहना है तो हमें यह सोचकर अपनेमें उन्हें बढ़ाना होगा कि भगवानसे उनका संबंध है। वे भगवानके दिए हुए हैं। हम भले बनना चाहते हैं, क्योंकि हम भगवानको पाना और उसमें मिल जाना चाहते हैं।

दुनियाके सारे निर्जीव नैतिक सिद्धांत बेकार हैं, क्योंकि भगवानसे अलग उनकी कोई हस्ती नहीं है—वे बेजान हैं। भगवानके प्रसादके रूपमें वे जानदार बनकर आते हैं। वे हमारे जीवनके अंग बन जाते हैं और हमें ऊंचा उठाते हैं। इसके खिलाफ, भलाईके बिना भगवान भी बेजान हैं। हम अपनी झूठी कल्पनाओंमें ही उसे जिंदा बनाते हैं—उसमें प्राण फूंकनेकी कोशिश करते हैं।

कलकत्ता, १७–८–'४७

: १३ :

गायको कैसे बचाया जाय ?

हिंदू-धर्ममें और हिंदुस्तानी जीवनकी आर्थिक व्यवस्थामें गायकी क्या जगह है, इसके बारेमें लोग बहुत ही कम जानते हैं। हिंदुस्तान विदेशी हुकूमतसे आजाद तो हो गया, लेकिन साथ ही देशकी सारी पार्टियोंकी एक रायसे उसके दो टुकड़े भी हो गए हैं। इससे आम लोगोंमें ऐसा विश्वास पैदा हो गया है कि वे एक हिस्सेको हिंदू हिंदुस्तान और दूसरेको मुस्लिम हिंदुस्तान कहने लगे हैं। इस विश्वासका समर्थन नहीं किया जा सकता। फिर भी दूसरे सारे झूठे विश्वासोंकी तरह हिंदू हिंदुस्तान और मुस्लिम हिंदुस्तानका यह विश्वास भी बड़ी कठिनाईसे दूर होगा। सच बात तो यह है कि जो कोई अपने आपको इस देशकी संतान कहते हैं और हैं, वे सब हिंदुस्तानी

संघ और पाकिस्तानके एक-से नागरिक हैं, भले ही वे किसी भी धर्म या रंगके हों।

फिर भी, प्रभावशाली हिंदू बहुत बड़ी तादादमें यह झूठा विश्वास करने लगे हैं कि हिंदुस्तानी संघ हिंदुओंका है और इसलिए उन्हें कानूनके जरिये अपने इस विश्वासको गैर-हिंदुओंसे भी जबरन मनवाना चाहिए। इसलिए यूनियनमें गायोंकी हत्याको रोकनेका कानून बनवानेके लिए सारे देशमें जोशकी एक लहर-सी फैल रही है।

ऐसी हालतमें—जिसकी नींव मेरी रायमें अज्ञान है—हिंदुस्तानमें दूसरों-जैसा ही गायका भक्त और समझदार प्रेमी होनेका दावा करते हुए मुझे अच्छे-से-अच्छे ढंगसे लोगोंके इस अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

सबसे पहले हम यह समझ लें कि धार्मिक मानोंमें गायकी पूजा बड़े पैमानेपर सिर्फ गुजरात, मारवाड़, युक्तप्रांत और बिहारमें ही होती है। गुजराती और मारवाड़ी लोग साहसी व्यापारी होते हैं। इसलिए वे इस बारेमें बड़ी-से-बड़ी आवाज उठानेमें कामयाब हुए हैं। लेकिन गो-हत्याके खिलाफ आवाज उठानेके साथ-ही-साथ वे अपनी व्यापारी बुद्धिको हिंदुस्तानके पशु-धनकी रक्षाके बड़े मुश्किल सवालको हल करनेमें नहीं लगा रहे हैं।

अपने धर्मके आचार-विचारको कानूनके जरिये दूसरे धर्मके लोगोंपर लादना बिलकुल गलत चीज है।

अगर गो-रक्षाके सवालको सिर्फ आर्थिक आवश्यकताकी निगाहसे ही देखा जाय तो वह बड़ी आसानीसे हल किया जा

सकता है, लेकिन शर्त यही है कि उसपर सिर्फ आर्थिक आधारसे ही विचार किया जाय। उस हालतमें दूध न देनेवाले सारे मवेशी, अपने पालनेके खर्चसे भी कम दूध देनेवाली गायें, और बूढ़े व बेकार जानवर बिना किसी हिचकिचाहटके मार डाले जाने चाहिए। इस बेरहम आर्थिक व्यवस्थाकी हिंदुस्तानमें कोई जगह नहीं है, हालांकि आपसी विरोधवाले मतोंके इस देशके लोग कई कठोर काम करनेके अपराधी हो सकते हैं और सचमुच हैं।

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषणके खर्चसे भी कम दूध देने लगती है या दूसरी तरहसे नुकसान पहुंचानेवाला बोझ बन जाती है तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है ? इस सवालका जवाब थोड़ेमें इस तरह दिया जा सकता है।

१. हिंदू गाय और उसकी संतानकी तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते हैं। अगर वे ऐसा करें, तो हमारे जानवर हिंदुस्तान और दुनियाके गौरव बन सकते हैं। आज इससे बिलकुल उलटा हो रहा है।

२. जानवरोंके पालन-पोषणका विज्ञान सीखकर गायकी रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काममें पूरी अंधाधुंधी चलती है।

३. हिंदुस्तानमें आज जिस बेरहमी तरीकेसे बैलोंको बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिमके हमदर्दी-भरे और नरम तरीके काममें लाकर इसे बचाया जा सकता है।

४. हिंदुस्तानके सारे पिंजरापोलोंका पूरा-पूरा सुधार किया जाना चाहिए। आज तो हर जगह पिंजरापोलका इंतजाम ऐसे लोग करते हैं जिनके पास न कोई योजना होती है और न वे अपने कामकी जानकारी ही रखते हैं।

५. जब ये महत्त्वके काम कर लिए जायंगे तो मुसलमान खुद, दूसरे किसी कारणसे नहीं तो अपने हिंदू भाइयोंके खातिर ही, मांस या दूसरे मतलबके लिए गायको न मारनेकी जरूरत समझ लेंगे।

पढ़नेवाले यह देखेंगे कि ऊपर बताई हुई जरूरतोंके पीछे एक खास चीज है। वह है अहिंसा, जिसे दूसरे शब्दोंमें प्राणी-मात्रपर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्त्वकी बातको समझ लिया जाय तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती हैं। जहां अहिंसा है, वहां अपार धीरज, भीतरी शांति, भले-बुरेका ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गो-रक्षा कोई आसान काम नहीं है। उसके नामपर देशमें बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिंसाके न होनेसे हिंदू गायके रक्षक बननेके बजाय उसके नाश करनेवाले बन गए हैं। गो-रक्षाका काम हिंदुस्तानसे विदेशी हुकूमतको हटानेके कामसे भी ज्यादा कठिन है।

कलकत्ता, २२-८-'४७

[नोट: कहा जाता है कि औसतन हिंदुस्तानकी गाय रोजाना २ पौंडके करीब दूध देती है, जब कि न्यूज़ीलैंडकी १४ पौंड, इंग्लैंडकी १५ पौंड और हालैंडकी २० पौंड दूध

देती है। जैसे-जैसे दूधकी पैदावार बढ़ती है, वैसे-वैसे तंदुरुस्तीके आंकड़े भी बढ़ते हैं।]
२३-८-'४७

: १४ :

क्या 'हरिजन'की जरूरत है ?

मुझे लगता है कि अब चूंकि अंग्रेजी हुकूमतसे हिंदुस्तानको आजादी मिल गई है, इसलिए 'हरिजन' अखबारोंकी अब और ज्यादा जरूरत नहीं है। मेरे विचार जैसे हैं वैसे ही सदा रहेंगे। आजाद हिंदुस्तानकी पुनर्रचनाकी योजनामें इस बातका ध्यान रखनेकी जरूरत है कि उसके देहात आजकी तरह उसके शहरोंपर निर्भर न रहें, बल्कि इससे उलटे, शहरोंका बना रहना सिर्फ देहातोंके लिए और देहातोंको फायदा पहुंचानेके लिए ही हो। इसलिए केंद्रकी गौरवभरी जगहपर चरखेको रखकर उसके आसपास देहातोंको जीवन देनेवाले गृह-उद्योगों-को सजाया जाय। मगर जान पड़ता है कि इस चीजको सबसे पीछे ढकेला जा रहा है। यही बात दूसरी कई चीजोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके मैं मोहक चित्र खींचा करता था। मैं और ज्यादा दिनोंतक ऐसा करनेका साहस नहीं कर सकता। पहलेसे ज्यादा बड़े तूफानमें आज मेरी नाव चल रही है। यह भी कहा जा सकता है कि मेरे ठहरनेकी कोई एक निश्चित जगह नहीं है। 'हरिजन'के पृष्ठ ज्यादातर

मेरे प्रार्थना-सभाके बादके भाषणोंसे ही भरे रहते हैं। मेरे खुदके लिखे हुए मजमूनका औसत तो उसमें हर हफ्ते सिर्फ डेढ़ कॉलम ही होता है। यह जरा भी संतोषकी बात नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूं कि 'हरिजन' साप्ताहिकोंके पाठक मुझे अपनी साफ राय दें कि वे अपनी राजनैतिक और आध्यात्मिक भूख बुझानेके लिए सचमुच अपने 'हरिजन' साप्ताहिककी जरूरत महसूस करते हैं या नहीं। पाठक जिस किसी भाषाके 'हरिजन' साप्ताहिकके ग्राहक हों, उसी भाषामें संपादक, 'हरिजन' अहमदाबादके नामपर अपने जवाब भेजें और अगर वे चाहते हैं कि 'हरिजन' निकलता रहे तो वे संक्षेपमें मुझे यह बतला दें कि वे ऐसा क्यों चाहते हैं। जिस लिफाफेमें वे अपना जवाब भरकर भेजें, उसकी बाईं ओरके ऊपरके कोनेमें यह जरूर लिखें—'हरिजनके बारेमें।'

कलकत्ता, २४–८–'४७

: १५ :

विद्यार्थियोंके बारेमें

एक भाई लिखते हैं :

"विद्यार्थियों और उनके संघोंके बारेमें आपने 'हरिजन' में इस समय बड़े मौकेकी चर्चा शुरू की है। स्वर्गीय एच० जी० वेल्सने एक जगह विद्यार्थियोंके लिए 'अंडरग्रेज्युएट इंटेलिजेंस' शब्दका इस्तेमाल किया है। कच्ची समझवाले विद्यार्थियोंका बेजा फायदा उठानेका काम

इस नए जमानेमें भयंकर नुकसान करता है । वह विद्यार्थियोंको पढ़ाईसे दूर हटाता है और आजकी विषम परिस्थितिमें अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारता है ।

"आपके जिस लेखका मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसके वारेमें सवाल पूछा जा सकता है: "क्या गांधीजीने ही पहले-पहल विद्यार्थियोंको राजनीतिकी तरफ नहीं खींचा ? फिर आज वह ऐसा कैसे कहते हैं ?" मैं जानता हूं कि यह सच नहीं है; लेकिन यह जरूरी है कि आप अपने विचारोंको फिरसे जांचें ।

"दूसरी वात यह है कि विद्यार्थियोंके संघ क्या करें ? इसे कुछ विस्तारसे आपको वताना होगा । देशमें उनका एक संघ किस उद्देश्यसे वने ? आज तो आप जानते हैं कि विद्यार्थी-संघ राजनैतिक जीवनमें पांव रखनेके साधन समझे जाते हैं । कुछ लोग उनसे यही वेजा फायदा उठाते हैं । सिर्फ विद्याके लिए ही संघ वनाया जाय तो उसके लिए क्या करना चाहिए, यह आप लिखें तो वड़ा लाभ हो ।

"गुजरातके लिए नई यूनिवर्सिटीका विचार करनेके लिए वम्वई-सरकारने एक कमेटी कायम की है । उसके वारेमें लोग आपके विचार जानना चाहते हैं । अव आपको इसके लिए भी समय निकालना होगा ।"

कच्ची वुद्धि कैसा नुकसान करती है यह तो मैंने इसी हफ्तेमें देख लिया । विद्यार्थियोंकी एक खास सभामें मुझे यहांके वाइसचांसलर ले गए थे । विद्यार्थियोंने विना विचारे शहीदसाहवके वारेमें वदतमीजी दिखाई । वादमें वे ठीक रास्तेपर आए और पछताने लगे । और उन्होंने यह वात कर दिखाई कि सच्चा रास्ता दिखानेवाला मिले तो वह उनकी कच्ची वुद्धिका अच्छा इस्तेमाल करके उसे कैसे पक्की

वना देता है। यह चीज इस अंकमें[1] छपे मेरे प्रार्थनाके वादके भाषणोंसे साफ समझमें आ जायगी।

'हरिजनवंधु'में अंग्रेजीसे गुजरातीमें तरजुमा किया गया होगा। मुझे आशा है कि यह तरजुमा विलकुल ठीक होगा। अंग्रेजी, मेरे हिंदुस्तानीमें दिए गए भाषणका तरजुमा है। असल हिंदुस्तानी तो कौन भेज सकता है? ऐसी सहूलियत मैं अपने आप खो वैठा हूं। प्यारेलालजी और सुशीलावहन ज्यादा उपयोगी सेवामें लगे हुए हैं। राजकुमारीकी सेवा और मदद तो मुझे महीनोंसे नहीं मिल रही है। उनका उपयोग भी आज ज्यादा वड़े काममें हो रहा है।

आखिरी सवाल मैं पहले लेता हूं:

विद्यार्थियोंका एक ही संघ बने तो उसमेंसे वड़ी भारी ताकत पैदा होगी और वह देशकी वहुत सेवा कर सकेगा। उसका ध्येय एक ही हो सकता है देशकी सेवा करना, पैसा कमाना नहीं। अगर विद्यार्थी ऐसा करेंगे तो उनका ज्ञान खूव वढ़ेगा। हलचलोंमें सिर्फ वे ही लोग हिस्सा लें, जो पढ़ाई खतम कर चुके हैं। पढ़ते समय तो विद्यार्थियोंको अपना ज्ञान वढ़ानेका काम ही करना चाहिए। आजकी शिक्षा देशके हितको नुकसान पहुंचानेवाली है। यह दिखाना संभव है कि आजकी शिक्षासे देशको थोड़ा फायदा हुआ और हो रहा है; लेकिन मेरी नजरमें वह कुछ नहीं है। कोई उससे

---

[1] ७ सितम्वर १९४७ के 'हरिजनवंधु'में प्रकाशित २९ अगस्त १९४७ को कलकत्तेमें दिया गया भाषण।

धोखा न खाय। उसके फायदेमंद होनेकी सबसे बड़ी कसौटी है कि आज खाने और कपड़ेकी जो भारी तंगी है उसमें—खुराक और कपड़ेकी पैदावारमें—क्या यह शिक्षा कोई मदद पहुंचाती है? आजकी नादानीभरी हत्या और खूंरेजीको दबानेमें वह क्या हिस्सा लेती है? हर देशकी पूरी शिक्षा उसे तरक्कीकी तरफ ले जानेवाली होनी चाहिए। इससे कौन इन्कार करेगा कि हिंदुस्तानमें दी जानेवाली शिक्षासे यह उद्देश्य पूरा नहीं होता? इसलिए विद्यार्थियोंके संघका एक ध्येय यह होना चाहिए कि वे आजकी शिक्षाके दोष खोजें और अपनेमें पाए जानेवाले उन दोषोंको दूर करें। अपने सही कामसे वे शिक्षाके महकमोंको अपने विचारका बना सकेंगे। अगर विद्यार्थी ऐसा करेंगे तो वे राजनैतिक दलबंदीमें नहीं फँसेंगे। संघकी नई योजनामें रचनात्मक कामको कुदरती तौरपर उचित जगह मिलेगी। इससे देशकी राजनीति शुद्ध बनी रहेगी।

अब मैं पहला सवाल लेता हूं:

आजादीकी लड़ाईके समय मैंने विद्यार्थियोंकी शिक्षाके बारेमें क्या कहा था वह भुला दिया गया मालूम होता है। स्कूलों और कालेजोंमें रहकर मैंने विद्यार्थियोंको राजनीतिमें पड़नेकी बात नहीं सिखाई थी। मैंने तो उन्हें अहिंसक असहयोग सिखाया था, स्कूल और कालेज खाली करके देश-सेवाके काममें लगना सिखाया था। नए विद्यापीठ और नए कालेज या स्कूल खोलनेकी कोशिश की थी। बदकिस्मतीसे चालू शिक्षाका जाल इतना मजबूत था कि उसमेंसे थोड़े ही लोग

बाहर निकल पाए थे। इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि पहले मैंने विद्यार्थियोंको राजनीतिमें खींचा था। इसके सिवा जब मैं २० सालतक दक्षिण अफ्रीकामें रहकर १९१५में वापिस आया तब स्कूलों और कालेजोंमें पढ़ते हुए भी, विद्यार्थी देशकी राजनीतिकी तरफ खिंच चुके थे। उस समय शायद इसके सिवा दूसरा कुछ करना असंभव था। विदेशी शासकोंने देशकी सारी रचना ऐसी बना रखी थी कि देशको गुलामीके फंदेसे छुड़ाने लायक राजनीतिमें कोई पड़ ही नहीं सकता था। उन्होंने शिक्षाका सारा काम अपने हाथमें रखकर करोड़ोंको अज्ञानके अंधेरेमें पड़े रहने दिया और विदेशी हुकूमतको मजबूत बनाया। इससे विदेशी हुकूमतके कायम किए हुए स्कूलों और कालेजोंके सिवा दूसरा कोई साधन देशभक्त कार्यकर्ताओंके सामने रह नहीं गया था। इस साधनसे कहां-तक बेजा फायदा उठाया गया है, इसकी यहां जांच करनेकी जरूरत नहीं।

कलकत्ता, ३०-८-'४७

: १६ :

अहिंसा सफल या असफल ?

सवाल---जब आप नोआखालीमें थे तब अक्सर कहा करते थे कि अगर मुझे अपने मिशनमें कामयाबी न मिली तो वह मेरी अपनी अहिंसाकी नाकामयाबी---होगी, खुद अहिंसाकी नहीं। यहां कलकत्तेमें जो सफलता

मिली है उसे देखते हुए क्या आप सोचते हैं कि आपकी अहिंसा कामयाब हुई है या कामयाबीके रास्तेपर है ?

जवाब—अहिंसाके बारेमें मेरे विचारोंका यह सही बयान है। अहिंसा हमेशा अचूक होती है। इसलिए जब वह नाकाम हुई दिखाई पड़े तो वह नाकामी, अहिंसाका उपयोग करनेवालेकी अयोग्यताकी वजहसे है। मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि नोआखालीमें मेरी अहिंसा असफल रही है, न यही कहा जा सकता कि वह सफल हुई है। अभी तो उसकी जांच हो रही है। और जब मैं अपनी अहिंसाके बारेमें बोलता हूं तो मैं उसे अपने तक ही सीमित नहीं मानता। उसमें नोआखालीमें मेरे साथ काम करनेवाले भाई भी शामिल हैं। इसलिए वहां मिलनेवाली सफलता या असफलताका श्रेय मेरे और मेरे साथियोंके सम्मिलित कामको मिलेगा।

नोआखालीके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है, वह कलकत्तेपर भी लागू होता है। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इस बड़े शहरमें सांप्रदायिक सवालको हल करनेमें जो अहिंसाका उपयोग किया गया है, उसकी सफलतामें कोई संदेह नहीं है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, कलकत्तेके दो फिरकोंमें दोस्ती कायम होनेकी बातको चमत्कार मानना गलती है। इसके लिए परिस्थिति तो पहलेसे ही तैयार थी। इतनेमें शहीदसाहब और मैं इसका श्रेय लेनेके लिए सामने आ गए। जो हो, अहिंसाके प्रयोगकी सफलता या असफलताके बारेमें अभीसे कोई बात कहना जल्दबाजी होगी। सबसे पहली

वात तो यह है कि हम दोनों साथियोंके विचार एक-से हों और हम दोनों अहिंसामें विश्वास करें। इसका पूरा भरोसा हो जानेपर मैं कहूंगा कि अगर हम अहिंसाके विज्ञानको और उसके प्रयोगको जानते हैं तो हम जरूर कामयाव होंगे।

कलकत्ता, ३१-८-'४७

: १७ :

कलकत्तेका दंगा

आपको यह रिपोर्ट देते हुए मुझे अफसोस होता है कि पिछली रातको कुछ नौजवान मेरे पास एक आदमीको लाए, जिसे पट्टी वंधी हुई थी। मुझसे कहा गया कि उस आदमीपर किसी मुसलमानने हमला किया है। प्रधान-मंत्रीने उसकी जांच कराई तो पता चला कि उसके शरीरपर चाकूके कोई निशान नहीं थे, जैसा कि उन लोगोंने बतलाया था। यहांपर खास वात यह नहीं है कि उस आदमीको लगी हुई चोट कितनी भयंकर थी। जिस वातपर मैं जोर देना चाहता हूं, वह यह है कि इन नौजवानोंने खुद ही न्यायाधीश और खुद ही सजा देनेवाले वननेकी कोशिश की।

यह कलकत्ता-समयके अनुसार १० वजे रातकी वात है। वे लोग वड़े जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। मेरी नींदमें विघ्न पड़ चुका था, मगर क्या हो रहा है इस वातको न जानते हुए मैंने चुपचाप पड़े रहनेकी कोशिश की। मैंने खिड़कीके

कांचोंके टूटनेकी आवाज सुनी । मेरे दोनों तरफ दो बहुत बहादुर लड़कियां लेटी हुई थीं । वे सोई नहीं थीं । मेरे बिना जाने—क्योंकि मेरी आंखें बंद थीं—वे उस थोड़ी-सी भीड़में गईं और उसे शांत करनेकी उन्होंने कोशिश की । भगवानको धन्यवाद है कि उस भीड़ने उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाया । उस परिवारकी बूढ़ी मुस्लिम महिला, जिसे सब बड़े प्रेमसे 'बी अम्मा' कहते थे, और एक मुस्लिम नौजवान, शायद खतरेसे मेरी हिफाजत करनेके लिए, मेरे बिस्तरके पास आकर खड़े हो गए । भीड़का शोर-गुल बढ़ता ही गया । कुछ लोग बीचके बड़े कमरेमें घुस आए और कई दरवाजोंको धक्के मारकर खोलने लगे । मैंने महसूस किया कि मुझे उठकर गुस्सेसे भरी उस भीड़के सामने जरूर जाना चाहिए । मैं उठा और एक दरवाजेकी देहलीजपर जाकर खड़ा हो गया । दोस्तोंने मुझे घेर लिया और आगे जानेसे मुझे रोकने लगे । मैं अपने मौन-व्रतको ऐसे मौकोंपर तोड़ देता हूं । इसलिए मैंने अपना मौन तोड़कर उन गुस्सेसे भरे हुए नौजवानोंसे शांत होनेकी अपील करना शुरू किया । मैंने कनु गांधीकी बंगाली पत्नी आभासे कहा कि वह मेरे कुछ शब्दोंका बंगालीमें तरजुमा कर दे । वह भी किया गया, मगर कोई फायदा नहीं हुआ । मानों उन लोगोंने समझदारीकी कोई भी बात सुननेके लिए अपने कान बंद कर लिए थे ।

मैंने और कुछ न करके हिंदू ढंगसे अपने दोनों हाथ जोड़े । और ज्यादा खिड़कियोंके कांच टूटनेकी आवाज आने लगी । उस भीड़में जो दोस्ताना रुखवाले लोग थे, उन्होंने भीड़को

शांत करनेकी कोशिश की। पुलिस अफसर भी वहां मौजूद थे। उनके लिए यह तारीफकी वात है कि उन्होंने अपनी सत्ताका उपयोग करनेकी कोशिश नहीं की। उन्होंने भी भीड़से शांत होनेकी अपील करते हुए अपने हाथ जोड़े। मुझपर लाठीका एक वार हुआ, जो मुझे और मेरे आसपास खड़े हुए लोगोंको लगते-लगते वचा। मुझे निशाना वनाकर फेंकी गई एक ईंट मेरे पास खड़े हुए एक मुसलमान दोस्तको लगी। वे दो लड़कियां मुझे जरा-सी देरके लिए भी नहीं छोड़ना चाहती थीं और आखिरतक वे मेरे पास वनी रहीं। इतनेमें पुलिस सुपरिंटेंडेंट और उनके अफसर भीतर आए। उन्होंने भी जोर-जवरदस्ती नहीं की। उन्होंने मुझसे दरख्वास्त की कि मैं भीतर चला जाऊं, तव उन्हें उन नौजवानोंको शांत करनेका मौका मिलेगा। कुछ देर वाद भीड़ वहांसे हट गई।

अहातेके फाटकके वाहर जो कुछ हुआ, उसके वारेमें मैं सिर्फ इतना ही जानता हूं कि भीड़को हटानेके लिए पुलिसको अश्रुगैसका इस्तेमाल करना पड़ा था। इसी वीच डा० पी० सी० घोष, आनंदवावू और डा० नृपेन भीतर आए और मुझसे कुछ चर्चा करनेके वाद चले गए। दूसरे दिन मेरा नोआखाली जानेका इरादा था, इसलिए खुशकिस्मतीसे शहीदसाहव उसकी तैयारी करनेके लिए उस दिन अपने घर चले गए थे। ऊपर दी हुई वेहूदा घटनाका खयाल करके मैं कलकत्ता छोड़कर नोआखाली जानेकी वात सोच भी न सका, क्योंकि वह घटना कलकत्ताको किस हालतमें पहुंचा देगी यह कोई नहीं कह सकता था।

इस घटनाका सवक क्या है ? मैं साफ तौरपर समझ गया हूं कि अगर हिंदुस्तानको महंगे दामों हासिल की हुई अपनी आजादीको टिकाए रखना है तो सब मर्दों और औरतोंको मारपीट और जोर-जवरदस्तीके कानूनको पूरी तरह भूल जाना होगा। जो कुछ लोगोंने करना चाहा वह तो इस जंगली कानूनकी भद्दी नकलमात्र है। अगर मुसलमानोंने वुरा वर्ताव किया था और इसकी शिकायत करनेवाले लोग मंत्रियोंके पास नहीं जाना चाहते थे तो वे मेरे या मेरे दोस्त शहीद-साहवके पास आ सकते थे। यही वात उन मुसलमानोंपर भी लागू होती है जिन्हें कोई शिकायत करनी है। अगर सभ्य समाजके वुनियादी नियमोंपर अमल नहीं किया जाता तो कल-कत्ता या दूसरी किसी भी जगह शांति वनाए रखनेका कोई रास्ता नहीं है। जनता, पंजावमें या हिंदुस्तानके वाहर होने-वाले वहशियाना कामोंपर ध्यान न दे। यह सुनहला नियम सवपर एक ही रूपमें लागू होता है कि कोई शख्स कानूनको कभी भी अपने हाथमें न ले।

मेरे सेक्रेटरी देवप्रकाशने, जो पटनामें हैं, तारके जरिये मुझे यह खवर दी है—"पंजावकी घटनाओंसे जनतामें उत्तेजना है। अखवारोंको और जनताको उनके कर्त्तव्यकी याद दिलाने-वाला आपका वयान जरूरी मालूम होता है।" श्रीदेवप्रकाश कभी विना कारण उत्तेजित नहीं होते। अखवारोंमें जरूर कुछ गैर-जिम्मेदार शव्द निकले होंगे। इस समय जव कि हम वारूदखानेपर वैठे हुए हैं, चौथा स्टेट—प्रेस—को वहुत ज्यादा समझदार और मौन होनेकी जरूरत है। इस समय

अविवेक चिनगारीका काम करेगा। मुझे उम्मीद है कि हर संपादक और संवाददाता पूरी तरह अपने फर्जको समझेगा।

मुझे एक बात यहां जरूर कह देनी चाहिए। पंजाबसे मुझे एक जरूरी संदेशा मिला है कि मैं जल्दी-से-जल्दी वहां पहुंचूं। मैं कलकत्तामें होनेवाली अशांतिके बारेमें सब तरहकी अफवाहें सुनता हूं। मुझे उम्मीद है कि अगर वे बिलकुल बेबुनियाद नहीं हैं तो बढ़ा-चढ़ाकर जरूर कही गई हैं। कलकत्ताके लोगोंको फिरसे मुझे विश्वास दिलाना होगा कि यहां कोई गड़बड़ी नहीं होगी और जो शांति एक बार कायम हो चुकी है, वह भंग नहीं होगी।

पिछली १४ अगस्तसे जब यहां शांति नजर आई तभीसे मैं कहता आया हूं कि यह सिर्फ थोड़े ही दिनोंकी शांति हो सकती है। इस शांतिके कायम होनेका कारण कोई चमत्कार नहीं था। क्या मेरी आशंका सच साबित होगी और कलकत्तामें फिरसे वहशियाना वारदातें होने लगेंगी? हम उम्मीद करें कि ऐसा नहीं होगा। हम प्रभुसे प्रार्थना करें कि वह हमारे दिलोंको छू दे, ताकि हम अपने पागलपनको फिरसे न दोहरावें।

ऊपरकी बातें लिखनेके बादसे, यानी करीब चार बजेके बादसे शहरके अलग-अलग हिस्सोंमें होनेवाली घटनाओंका पूरा-पूरा हाल मेरे पास आ रहा है। कुछ जगहें, जो कलतक सुरक्षित थीं, अचानक खतरनाक बन गई हैं। कई लोग मारे गए हैं। मैंने दो बहुत गरीब मुसलमानोंकी लाशें देखीं। कुछ फटेहाल मुसलमानोंको किसी हिफाजतकी जगहकी तरफ

गाड़ियोंमें हटाए जाते हुए देखा। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि पिछली रातकी जिन घटनाओंका इतने विस्तारसे ऊपर वयान किया गया है, वे इस आगके सामने वहुत मामूली हैं। इस खुली आगमें घुसकर मैं जो कुछ करूं, उसमेंसे एक भी ऐसी वात मुझे नजर नहीं आती, जो इस आगको कावूमें कर सके।

जो मित्र मुझे शामको मिले थे उन्हें मैंने वतला दिया है कि इस समय उनका फर्ज क्या है, दंगेको रोकनेके लिए मुझे क्या करना चाहिए। सिक्खों और हिंदुओंको भूलना नहीं चाहिए कि इन कुछ दिनोंमें पूरवी पंजावने क्या किया है। अव पश्चिमी पंजावके मुसलमानोंने अपने पागलपनभरे काम शुरू किए हैं। कहा जाता है कि पंजावकी वारदातोंसे सिक्ख और हिंदू गुस्सा हो उठे हैं।

मैं ऊपर वतला चुका हूं कि पंजावसे मुझे जरूरी वुलावा आया है, मगर जव कलकत्तामें दंगेकी आग फिरसे भड़की हुई जान पड़ती है तव मैं कौन-सा मुंह लेकर पंजाव जा सकता हूं? अभीतक जो हथियार मेरे लिए अचूक सावित हुआ है, वह है उपवास। जोर-जोरसे चिल्लाती हुई भीड़के सामने जाकर खड़े हो जाना हमेशा काम नहीं देता। पिछली रातको उससे सचमुच कोई फायदा नहीं हुआ। जो काम मेरे मुंहसे निकले हुए शब्द नहीं कर सकते, उसे शायद मेरा उपवास कर दे। अगर कलकत्ताके सारे दंगाइयोंके दिलोंपर उसका असर हो जाय तो पंजावके दंगाइयोंके दिलोंको भी वह छू सकता है। इसलिए आज रातको सवा आठ वजेसे मैं अपना उपवास शुरू करता हूं। वह सिर्फ उसी हालतमें और तभी खत्म होगा

जब कलकत्ताके लोग अपना पागलपन छोड़ देंगे । उपवासके दरमियान जब मेरी पानी पीनेकी इच्छा होगी तब मैं हमेशाकी तरह नमक और सोडा-बाइकार्ब मिला हुआ पानी लूंगा ।

अगर कलकत्ताके लोग चाहते हैं कि मैं पंजाब जाकर वहांके लोगोंकी मदद करूं तो उन्हें जितनी हो सके उतनी जल्दी मेरा उपवास तुड़वाना चाहिए ।

कलकत्ता, १–९–'४७

: १८ :

सही या गलत ?

गुजरातीमें मुझे लिखे गए एक खतका सारांश नीचे देता हूं :

"१५ सितंबर १९२७ के 'यंग इंडिया'में आपका मद्रासमें दिया हुआ जो भाषण छपा है उसमें आपने कहा है कि जो धर्म, शुद्ध अर्थके खिलाफ हो, वह धर्म नहीं है; और जो अर्थ धर्मके खिलाफ हो, वह शुद्ध नहीं है, इसलिए वह छोड़ देने लायक है ।

"मैं तो जानता ही हूं कि एक अरसेसे आपका यह मत रहा है । मगर इसे सबने माना कब है ? इसलिए मुझे लगता है कि आज धर्मके नामपर होनेवाली खूंरेजीको शांत करनेमें आप जो अपना सारा वक्त और ताकत खर्च कर रहे हैं, यह ठीक नहीं है । आपका रचनात्मक कार्यक्रम आज कहां चल रहा है ? कांग्रेसके हाथमें आज हिंदुस्तानके बड़े हिस्सेकी बागडोर है । अब तो आजादी मिल गई । अंग्रेज चले गए । तब फिर

आप अपने रचनात्मक कामको आगे बढ़ाकर यह साबित करनेमें पूरा वक्त क्यों नहीं लगाते कि धर्म और अर्थ दो विरोधी चीजें नहीं हैं ? आज-कल होनेवाले आर्थिक अन्यायके खिलाफ आप कुछ भी नहीं लिखते, इससे भले लोग यही मानते हैं कि कांग्रेस-सरकार जो कुछ करती है, उसमें आपका आशीर्वाद होता ही है। लेकिन मैं तो यह मानता हूं कि आप ही रचनात्मक कामके जन्मदाता होकर आज उसे दफना रहे हैं। आज खादी या ग्रामोद्योगके अर्थशास्त्रके आधारपर स्वावलंबनसे चलनेवाली एक भी संस्था कहीं देखनेमें नहीं आती।"

ऊपर की बात आवेशमें लिखी गई है। इससे लिखने-वाले भाई आधी सच बात ही कह सके हैं। खास बात यह है कि हिंदू-मुस्लिम-एकताकी बात मेरे मनमें तबसे समाई हुई है, जब कि खादी और उसके आसपासके ग्राम-उद्योगोंकी बात मेरे सपनेमें भी नहीं थी।

जब मैं बारह वर्षकी उम्रमें एक मामूली विद्यार्थीकी तरह पहली अंग्रेजी क्लासमें भर्ती हुआ था, तभीसे मैं अपने मनमें यह मानने लगा था कि हिंदू, मुसलमान, पारसी सब एक ही हिंदुस्तानकी संतान हैं और इसलिए उनमें आपसमें भाईचारा होना चाहिए। यह सन् १८८५ से पहलेकी बात है, जब कि कांग्रेसका जन्म भी नहीं हुआ था। इसके सिवा यह एकता कायम करनेका काम रचनात्मक कामका एक ऐसा अंग है, जिसे अलग नहीं किया जा सकता। इसके लिए मैंने बहुतसे खतरे मोल लिए हैं और मैं मानता हूं कि अगर यह न हो तो दूसरे रचनात्मक काम चल ही न सकें। कम-से-कम मेरे हाथों तो चल ही न सकें। मुझसे यह नहीं हो सकता। खत लिखनेवाले भाईकी दलीलके मुताबिक तो मुझे नोआखाली नहीं जाना चाहिए था, बिहार

नहीं दौड़ना था। यानी जो काम मैं जानता हूं, जिसे मैंने बरसोंसे किया है, उस कामको कसौटीके वक्त भूल जाऊं। यह कैसे हो सकता है? इसे भूलकर मैं दूसरे रचनात्मक कामके पीछे दौड़ूं तो यह अपना धर्म छोड़ना होगा और इससे फायदा तो कुछ होनेवाला है नहीं।

जिन कांग्रेस-सेवकोंके हाथमें आज बागडोर है, वे मेरे साथी हैं। यह भी कहा जा सकता है कि इन सबने मेरे साथ ही कांग्रेसमें तरक्की की और ऊंचे उठे। अगर मैं अपना अर्थशास्त्र इनके गले न उतार सका तो फिर किसे समझा सकूंगा? शासनकी बागडोर हाथमें आनेके बाद उनकी बुद्धि कबूल नहीं करती कि वे जनतासे खादीशास्त्र मंजूर करा सकेंगे या ग्राम-उद्योगोंके मारफत गांवोंको नई जिंदगी दे सकेंगे। खत लिखनेवाले भाईका सुझाव है कि मुझे श्री जाजूजी[1]को और श्रीकुमारप्पा[2]-को हिंदुस्तानकी बागडोर लेनेके लिए तैयार करना चाहिए। यह कैसा भ्रम है? इस तरह किसीको तैयार करनेवाला मैं कौन होता हूं? पंचायत-राज एक हाथसे नहीं चल सकता। जिनके हाथोंमें शासन है, उनकी जगह लेनेवाला कोई ज्यादा बलवान और विवेकशील आदमी हो, तो आज उन्हें हटना पड़े। जहांतक मैं इन लोगोंको जानता हूं, वहांतक कह सकता हूं कि ये लोग हुकूमतके भूखे नहीं हैं। इसलिए जब कोई ज्यादा लायक आदमी पैदा होगा तब उसे पहचाननेमें इन्हें देर नहीं

---

[1]श्री कृष्णदास जाजू।

[2]श्री जे० सी० कुमारप्पा।

लगेगी और ये लोग खुशीसे उसके हाथमें हुकूमत सौंपकर अपना जीवन सफल मानेंगे ।

ऐसी भूल कोई न करे कि मैं यह जगह ले सकता हूं । अगर मैं प्रधान बननेके लिए तैयार होऊं तो ये लोग मेरा स्वागत करेंगे, मगर मुझमें राम नहीं है । मैं खुद रामका पुजारी हूं, उसका भक्त हूं । मगर रामके सब भक्त, राम थोड़े ही बन सकते हैं ? हमें तो राम रखे, उसी तरह रहना चाहिए ।

इसके सिवा, यह बात ध्यान देने लायक है कि जो काम मैं अपने तरीकेसे कर रहा हूं, वही काम उनके अपने तरीकेसे करनेमें ही उनका सारा वक्त जाता है; क्योंकि वे समझते हैं कि जबतक सांप्रदायिक सवाल नहीं सुलझता तबतक हिंदुस्तानमें शांति नहीं हो सकती । और जबतक शांति नहीं होगी तबतक प्रजाके दूसरे सारे काम यों ही पड़े रहेंगे ।

अंतमें मुझे खत लिखनेवाले भाईने अपने जैसे विचार प्रकट किए हैं, वैसे विचार रखनेवालोंको समझना चाहिए कि अगर रचनात्मक कार्यक्रमपर करोड़ों इन्सानोंसे अमल कराना हो तो इसके लिए हजारों कार्यकर्ताओंकी जरूरत है, भले ही यह योजना एक इन्सानके दिमागसे निकली हो । लोगोंके सामने इसे रखे बरसों बीत गए हैं । अखिल भारत-चरखा-संघ, ग्राम-उद्योग-संघ, गो-सेवा-संघ, हिंदुस्तानी प्रचार-संघ, आदिवासी-सेवा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ वगैरह पैदा हुए । वे आज जिंदा हैं और अपनी ताकतके अनुसार काम कर रहे हैं । ये सब धर्म और अर्थका समीकरण समझ चुके हैं । सांप्रदायिक मेल-मिलापका काम करते हुए मैं ऊपरके सारे कामोंमें पहले-जैसा ही रस ले

रहा हूं, शक्तिके अनुसार उसमें अपना सिर भी खपा रहा हूं। अब इससे ज्यादा मुझसे उम्मीद भी न करनी चाहिए। आज जिसे मैं अपना फर्ज मान बैठा हूं, लालचमें पड़कर उससे मुझे डिगना नहीं चाहिए। ऊपरकी चेतावनी देनेके बदले, मुझे सावधान करनेके बदले, यह जरूरी है कि खत लिखनेवाले भाई जैसे सभी लोग सावधान होकर अपने काममें लग जायं।

मैंने सैकड़ों बार कहा है कि हमारे हाथमें हुकूमतका होना जरूरी नहीं है। जिन्हें हम हाकिम बनाते हैं, उन्हें सावधान रखना चाहिए। नेता तो गिनतीके होंगे, मगर जनता अपनी ताकत और अपने धर्मको समझ ले और उसके अनुसार काम करे, तो सब कुछ अपने आप ठीक हो सकता है। हमें आजादी भोगते अभी तो सिर्फ अठारह दिन ही हुए हैं, इतनेमें यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि सारा काम अपने आप हो जाय? जिनके हाथोंमें जनताने हुकूमत सौंपी है, वे भी नई परिस्थितिके लिए पहलेसे तैयार नहीं हैं, बल्कि तैयार हो रहे हैं।

कलकत्ता, ४-९-'४७

: १६ :

बिहार बिहारियोंके लिए और हिंदुस्तान ?

बिहार, सचमुच बिहारियोंके लिए है, लेकिन वह हिंदुस्तानके लिए भी है। जो बात बिहारके बारेमें सच है वही यूनियनके दूसरे सब सूबोंके बारेमें भी सच है। किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विहारमें परदेशीकी तरह वर्ताव नहीं किया जा सकता, जैसा कि शायद उसके साथ आजके पाकिस्तानमें या एक पाकिस्तानीके साथ हिंदुस्तानमें किया जा सकता है। अगर हम मुसीवतों और आपसी जलनसे वचना चाहते हैं तो हमें इस फर्कका ध्यान रखना चाहिए।

इसलिये हालांकि यूनियनके हर हिंदुस्तानीको विहारमें वसनेका हक है, फिर भी उसे विहारियोंको उखाड़ने या उनके हक छीननेके लिए ऐसा नहीं करना चाहिए। अगर इस शर्तपर अच्छी तरह अमल नहीं किया गया तो संभव है कि विहारमें गैर-विहारी हिंदुस्तानियोंकी ऐसी वाढ़ आ जाय कि विहारियोंको वड़ी तादादमें अपने सूवेसे वाहर निकलना पड़े। इस तरह हम इस नतीजेपर पहुंचनेके लिए मजवूर हो जाते हैं कि जो गैर-विहारी हिंदुस्तानी, विहारमें जाकर वसता है, उसे विहारकी सेवाके लिए ही ऐसा करना चाहिए, न कि हमारे पुराने मालिकोंकी तरह उसे चूसने और लूटनेके लिए।

इस विषयकी इस तरह जांच करनेसे हमारे सामने जमीं-दारों और रैयतका सवाल खड़ा होता है। जव कोई गैर-विहारी पैसा पैदा करनेके लिए विहारमें जाकर वसता है तो वहुत संभव है कि वह जमींदारसे मिलकर रैयतको चूसनेके लिए ऐसा करे। लेकिन जमींदार सचमुच रैयतके लिए अपनी जमींदारीके ट्रस्टी वन जायं तो ऐसा अपवित्र गुट्ट कभी वन ही नहीं सकता। विहारमें जमींदारीका कठिन सवाल अभी हल किया जानेको है। हम तो यह पसंद करेंगे कि विहारके छोटे और वड़े जमींदारों, उनकी रैयत और सरकारके वीच कोई

ऐसा उचित निष्पक्ष और संतोषके लायक समझौता हो, जिससे, कानून पास हो जानेपर ऐसा मौका न आए कि कोई उसपर अमल न करे, या जमींदारों या रैयतके साथ जबरदस्ती करनेकी जरूरत पड़े। काश, सारे हिंदुस्तानमें विना खून बहाए और बिना जबर्दस्ती किए ये सारे फेरफार—जिनमेंसे कुछ क्रांतिकारी भी होने चाहिएं—हो जायं! यह तो हुआ हिंदुस्तानके दूसरे सूबोंसे आकर बिहारमें बसनेवालोंके लिए।

वहांकी नौकरियोंका क्या हो? ऐसा लगता है कि अगर यूनियनके सारे सूबोंको हर दिशामें एक-सी तरक्की करनी हो तो हर सूबेकी नौकरियां, पूरे हिंदुस्तानकी तरक्कीके खयालसे ज्यादातर वहांके रहनेवालोंको ही दी जानी चाहिएं। अगर हिंदुस्तानको दुनियाके सामने स्वाभिमानसे सिर ऊंचा रखना है तो किसी सूबे और किसी जाति या तबकेको पिछड़ा हुआ नहीं रखा जा सकता। लेकिन अपने उन हथियारोंके वलपर हिंदुस्तान ऐसा नहीं कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब उठी है। उसे अपने हर नागरिकके जीवनमें और हालमें ही मेरे द्वारा 'हरिजन' में बताए गए समाजवादमें प्रकट होनेवाली अपनी स्वभावजन्य संस्कृतिके द्वारा ही चमकना चाहिए। इसका यह मतलव है कि अपनी योजनाओं या उसूलोंको जनप्रिय बनानेके लिए किसी भी तरहकी ताकत या दबावको काममें न लिया जाय। जो चीज सचमुच जन-प्रिय है, उसे सबसे मनवानेके लिए जनताकी रायके सिवा दूसरी किसी ताकतकी शायद ही जरूरत हो। इसलिए, बिहार, उड़ीसा और आसाममें कुछ लोगोंद्वारा की जानेवाली हिंसाके जो बुरे दृश्य देखे गए, वे

कभी नहीं दिखाई देने चाहिए थे। अगर कोई आदमी नियमके खिलाफ काम करता है या दूसरे सूबोंके लोग किसी सूबेमें आकर वहांके लोगोंके हक मारते हैं तो उन्हें सजा देने और व्यवस्था कायम रखनेके लिए जन-प्रिय सरकारें सूबोंमें राज कर रही हैं। सूबोंकी सरकारोंका यह कर्तव्य है कि वे दूसरे सूबोंसे अपने यहां आनेवाले सब लोगोंकी पूरी-पूरी हिफाजत करें। "जिस चीजको तुम अपनी समझते हो, उसका ऐसा इस्तेमाल करो कि दूसरेको नुक़सान न पहुंचे"—यह समानताका जाना-पहचाना उसूल है। यह नैतिक बर्तावका भी सुंदर नियम है। आजकी हालतमें यह कितना उचित मालूम होता है !

यहांतक मैंने सूबेमें आनेवाले नए लोगोंके बारेमें कहा। लेकिन उन लोगोंका क्या, जिनमेंसे कुछ बिहारमें १५ अगस्तके दिन सरकारी नौकरियोंमें और कुछ खानगी नौकरियोंमें थे ? जहांतक मेरा विचार है, ऐसे लोग जबतक दूसरा चुनाव नहीं करते तबतक उनके साथ बिहारियोंकी तरह ही बरताव किया जाना चाहिए। कुदरती तौरपर उन्हें परदेशियोंकी तरह अलग बस्ती नहीं बनानी चाहिए। "रोममें रोमनोंकी तरह रहो"—यह कहावत जहांतक रोमन बुराइयोंसे दूर रहती है, वहांतक समझदारीसे भरी और फायदा पहुंचानेवाली कहावत है। एक दूसरेके साथ घुल-मिलकर तरक्की करनेके काममें यह ध्यान रखना चाहिए कि बुराइयोंको छोड़ दिया जाय और अच्छाइयोंको पचा लिया जाय। बंगालमें एक गुजरातीके नाते मुझे बंगालकी सारी अच्छाइयोंको तुरंत पचा लेना चाहिए

और उसकी बुराईको कभी छूना भी नहीं चाहिए । मुझे हमेशा वंगालकी सेवा करनी चाहिए, उसे अपने फायदेके लिए चूसना नहीं चाहिए । दूसरोंसे विलकुल अलग रहनेवाली हमारी प्रांतीयता जिंदगीको वरबाद करनेवाली चीज है । मेरी कल्पनाके सूबेकी हद सारे हिंदुस्तानकी हदोंतक फैली हुई होगी, ताकि अंतमें उसकी हद सारे विश्वकी हदोंतक फैल जाय, वर्ना वह खतम हो जायगा ।

दिल्ली जाते हुए, रेलमें ८-९-'४७

: २० :

नशीली चीजोंकी मनाही

इस सुधारके लिए आज सबसे अच्छा मौका है । आज देशमें पंचायतका राज है । हिंदुस्तानके दोनों हिस्सोंके साथ-साथ देशी राज भी इस सुधारके लिए तैयार हैं । दोनों हिस्सोंमें भुखमरी फैली हुई है । न खानेको अनाज मिलता है, न पहननेको कपड़ा । जव लोग भुखमरी और नंगेपनके किनारे खड़े हों तव शराब, अफीम वगैरहके बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता । शराव और अफीम पीनेवाले लोग पैसा तो बरबाद करते ही हैं, साथ ही अपने आपपर काबू भी खो देते हैं । नशेके असरमें आदमी न करने लायक काम भी कर बैठता है । इसलिए हर तरहसे विचारते हुए नशीली चीजोंका खाना और पीना बंद होना ही चाहिए ।

हम सिर्फ कानून पास करके ही इस वुराईको खतम नहीं कर सकते। नशा करनेवाले चाहे जहांसे नशीली चीजें लाकर खाएं-पिएंगे। इनके वनानेवाले और वेचनेवाले काला वाजार वंद करनेके लिए एकदम तैयार नहीं होंगे।

इसलिए नीचेकी तमाम वातें एक साथ की जानी चाहिए :

(१) जरूरी कायदा वनाया जाय,

(२) लोगोंको नशेकी वुराई समझाई जाय,

(३) शरावकी दूकानोंपर ही सरकारको पीनेकी निर्दोष चीजोंकी दुकानें कायम करनी चाहिएं। और वहां कितावों, अखवारों और खेलोंके रूपमें मनवहलावके निर्दोष साधन रखने चाहिए।

(४) शराव, अफीम वगैरह वेचनेसे जो आमदनी हो, वह सव लोगोंको नशीली चीजें न वरतनेकी वात समझानेमें खर्च की जानी चाहिएं।

(५) नशीली चीजोंकी विक्रीसे होनेवाली आमदनीको राष्ट्रके वच्चोंकी शिक्षामें या जनताको फायदा पहुंचानेवाले दूसरे कामोंमें खर्च करना वड़ा पाप है। सरकारको ऐसी आमदनी राष्ट्र-निर्माणके कामोंमें खर्च करनेका लालच छोड़ना ही चाहिए। अनुभव यह वताता है कि नशीली चीजोंका खान-पान छोड़नेवालेको जो फायदा होता है उसे सारी प्रजाका फायदा समझना चाहिए। अगर हम इस वुराईको जड़से खतम कर दें तो हमें राष्ट्रकी आमदनी वढ़ानेके दूसरे वहुतसे रास्ते और साधन आसानीसे मिल जायंगे।

दिल्ली जाते हुए, रेलमें, ८–९–'४७

: २१ :

मंत्रियोंकी जिम्मेदारी

मेरे पास ऐसे बहुतसे खत आए हैं, जिनमें लिखनेवाले भाइयोंने हमारे मंत्रियोंके रहन-सहनको आरामतलब कहकर उसकी कड़ी आलोचना की है। उनपर यह आरोप लगाया गया है कि वे पक्षपातसे काम लेते हैं और अपने रिश्तेदारोंको ही आगे बढ़ाते हैं। मैं जानता हूं कि बहुत-सी आलोचना तो, आलोचकोंकी बेजानकारीकी वजहसे होती है। इसलिए मंत्रियोंको उससे दुःखी नहीं होना चाहिए। सिर्फ दोष बतलाने-वाली आलोचनामेंसे भी उन्हें अपने लिए अच्छा हिस्सा ले लेना चाहिए। यदि मेरे पास आए हुए पत्र मैं उनके पास भेज दूं तो उन्हें ताज्जुब होगा। संभव है कि उनके पास इनसे भी बुरे खत आते हों। जो हो, इन खतोंसे मैं यही सबक लेता हूं कि जहांतक सादगी, धीरज, ईमानदारी और मेहनत करनेका संबंध है, ये 'आलोचक' जनताद्वारा चुने हुए सेवकोंसे दूसरोंकी अपेक्षा ज्यादा उम्मीद रखते हैं। शायद मेहनत और अनुशासनको छोड़कर और किसी बातमें हमें पुराने अंग्रेज शासकोंकी नकल नहीं करनी चाहिए। अगर एक तरफ मंत्री लोग उचित आलोचनासे फायदा उठाने लगें और दूसरी तरफ आलोचना करनेवाले भाई कोई बात कहनेमें संयम और पूरी-पूरी सचाईका खयाल रखें तो इस टिप्पणीका मकसद पूरा हो जायगा। गलत बात कहने या बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेसे एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है।

दिल्ली जाते हुए, रेलमें, ८–९–'४७

: २२ :

दिल्लीकी अशांति

'मेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और' वाली कहावत मेरे जीवनमें कई वार सच सावित हुई है, जैसी कि वह दूसरे वहुतसे लोगोंके जीवनमें भी हुई होगी। जव मैंने पिछले इतवारको कलकत्ता छोड़ा तो मैं दिल्लीकी अशांत हालतके वारेमें कुछ भी नहीं जानता था। दिल्ली आनेके वाद मैं सारे दिन यहांकी मौजूदा दर्दभरी कहानी सुनता रहा हूं। मैं कई मुसलमान दोस्तोंसे मिला, जिन्होंने अपनी करुण कहानी सुनाई। जितना कुछ मैंने सुना, वह मुझे यह चेतावनी देनेके लिए काफी है कि जवतक दिल्लीकी हालत पहले-जैसी शांत न हो जाय तवतक उसे छोड़कर मुझे पंजाव नहीं जाना चाहिए।

इस गरम वातावरणको शांत करनेके लिए मुझे अपनी कुछ कोशिश करनी ही चाहिए और हिंदुस्तानकी इस राजधानीके लिए 'मुझे करो या मरो' वाला अपना पुराना सूत्र काममें लेना ही चाहिए। मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि दिल्लीमें रहनेवाले लोग इस निरर्थक वरवादीको पसंद नहीं करते। मैं उन शरणार्थियोंके गुस्सेको समझता हूं, जिन्हें दुर्भाग्यने पश्चिमी पंजावसे खदेड़ दिया है। मगर गुस्सा पागलपनका छोटा भाई है। वह परिस्थितिको हर तरहसे विगाड़ ही सकता है। इस मर्जका इलाज वदला लेना नहीं है। उससे असली वीमारी और ज्यादा विगड़ती है। इसलिए जो लोग खून

करने, आग लगाने और लूट-मार करनेके नासमझीभरे कामोंमें लगे हुए हैं, उनसे मेरी विनती है कि वे अपना हाथ रोकें।

केंद्रीय सरकारमें हिंदुस्तानी संघके सबसे काबिल, हिम्मतवर और ज्यादा-से-ज्यादा आत्मबलिदानकी भावना-वाले लोग इस वक्त काम कर रहे हैं। आजादीका ऐलान होनेके बाद, उन्हें अपना काम संभाले अभी महीनाभर भी नहीं हुआ है। बिगड़े हुए कारबारको व्यवस्थित करनेका उन्हें मौका न देना गुनाह और आत्मघात करना है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि देशमें अनाजकी कमी है। दंगोंकी वजहसे दिल्लीका सारा इंतजाम बिगड़ गया है, जिससे अनाज बांटनेका काम असंभव हो गया है। भगवान पागल बनी हुई दिल्लीमें फिरसे शांति कायम करे!

मैं इस उम्मीदके साथ अपनी बात खतम करता हूं कि मेरे विदा होते वक्त कलकत्ताने जो वचन दिया था, उसे वह पूरा करेगा। मेरे आसपास फैले हुए इस पागलपनके बीच उसका दिया हुआ वचन ही मुझे सहारा दिए हुए है।

नई दिल्ली, ९-९-'४७

: २३ :

सावधान!

अगर सरकारें और उनके दफ्तर सावधानी नहीं रखेंगे तो मुमकिन है कि अंग्रेजी जबान हिंदुस्तानीकी जगहको हड़प

ले। इससे हिंदुस्तानके उन करोड़ों लोगोंको बेहद नुकसान होगा, जो कभी भी अंग्रेजी समझ नहीं सकेंगे। मेरे खयालमें प्रांतीय सरकारोंके लिए यह बहुत आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहां ऐसे कर्मचारी रखें, जो सारा काम प्रांतीय भाषाओं और अंतर्प्रांतीय भाषामें कर सकें। मेरी रायमें अंतर्प्रांतीय भाषा, सिर्फ नागरी या उर्दू लिपिमें लिखी जानेवाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है।

यह जरूरी फेरफार करनेमें एक दिन खोना भी देशको भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुंचाना है। सबसे पहली और जरूरी चीज यह है कि हम अपनी उन प्रांतीय भाषाओंका संशोधन करें जो हिंदुस्तानको वरदानकी तरह मिली हुई हैं। यह कहना दिमागी आलसके सिवा और कुछ नहीं है कि हमारी अदालतों, हमारे स्कूलों और यहांतक कि हमारे दफ्तरोंमें भी यह भाषा-संबंधी फेरफार करनेके लिए कुछ वक्त, शायद कुछ बरस चाहिए। हां, जबतक प्रांतोंका भाषाके आधारपर फिरसे बंटवारा नहीं होता तबतक बंबई और मद्रास-जैसे प्रांतोंमें, जहां बहुत-सी भाषाएं बोली जाती हैं, थोड़ी मुश्किल जरूर होगी। प्रांतीय सरकारें ऐसा कोई तरीका खोज सकती हैं, जिससे उन प्रांतोंके लोग वहां अपनापन अनुभव कर सकें। जबतक हिंदुस्तानी-संघ इस सवालको हल न कर ले कि अंतर्प्रांतीय जबान नागरी या उर्दू लिपिमें लिखी जानेवाली हिंदुस्तानी हो, या सिर्फ नागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिंदी, तबतकके लिए प्रांतीय सरकारें ठहरी न रहें। इसकी वजहसे उन्हें जरूरी सुधार करनेमें देर न लगानी चाहिए। भाषाके

बारेमें यह एक बिलकुल गैरजरूरी विवाद खड़ा हो गया है, जिसकी वजहसे हिंदुस्तानमें अंग्रेजी-भाषा घुस सकती है। और अगर ऐसा हुआ तो इस देशके लिए यह एक ऐसे कलंककी बात होगी, जिसे धोना हमेशाके लिए असंभव होगा। अगर सारे सरकारी दफ्तरोंमें प्रांतीय भाषाके इस्तेमाल करनेका कदम इसी वक्त उठाया जाय तो अंतर्प्रांतीय जबानका उपयोग तो उसके बाद तुरंत ही होने लगेगा। प्रांतोंको केंद्रसे संबंध रखना ही पड़ेगा और अगर केंद्रीय सरकारने शीघ्र ही यह महसूस करनेकी समझदारी की कि उन मुट्ठीभर हिंदुस्तानियोंके लिए, हिंदुस्तानकी संस्कृतिको नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए, जो इतने आलसी हैं कि जिस जबानको, किसी भी पार्टीका दिल दुखाए बगैर सारे हिंदुस्तानमें आसानीसे अपनाया जा सकता है, उसे भी नहीं सीख सकते। तो ऐसी हालतमें प्रांतीय सरकारें केंद्रीय सरकारसे अंग्रेजीमें अपना व्यवहार रखनेका साहस नहीं कर सकेंगी। मेरा मतलब यह है कि जिस तरह हमारी आजादीको जबरदस्ती छीननेवाले अंग्रेजोंकी राजनैतिक हुकूमतको हमने सफलतापूर्वक इस देशसे निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृतिको दबानेवाली अंग्रेजी जबानको भी हमें यहांसे निकाल बाहर करना चाहिए। हां, व्यापार और राजनीतिकी अंतर्राष्ट्रीय भाषाके नाते अंग्रेजीका अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा।

नई दिल्ली, ११-९-'४७

: २४ :

शरणार्थी-कैंपमें सफाई

आज राजकुमारी अमृतकौर और डा० सुशीला नैयर मुझे अर्विन अस्पतालमें ले गई थीं। वहांपर जात वगैरहका कोई भेदभाव रखे वगैर सिर्फ जख्मी लोगोंका ही इलाज किया जाता है। मरीजोंमें एक वच्चा था, जिसकी उमर मुश्किलसे पांच वरसकी होगी। गोली लगनेसे उसके वदनपर घाव हो गया था। डाक्टर और नर्सोंपर कामका भारी वोझ था, वहां मुसलमान मरीजोंकी तादाद ज्यादा थी, क्योंकि हिंदू और सिक्ख मरीजोंको दूसरे अस्पतालोंमें भेज दिया गया था।

राजकुमारीसे मुझे पता चला कि शरणार्थी कैंपोंमे पाखाने साफ करनेके लिए भंगी भेजना करीव-करीव नामुमकिन है। इससे हैजे-जैसी छूतकी वीमारीके फैलनेका डर है। मेरी रायमें शरणार्थियोंको अपने-अपने कैंपोंमें खुद सफाई करनी चाहिए। पाखाने भी उन्हें ही साफ करने चाहिए और कैंप-व्यवस्थापककी स्वीकृतिसे कुछ उपयोगी काम करना चाहिए। सिर्फ उन लोगोंको छोड़कर, जो शारीरिक मेहनत नहीं कर सकते, वाकी सवपर यह नियम लागू होता है। सारे शरणार्थी-कैंप सफाई, सादगी और मेहनतके नमूने होने चाहिए।

आज पाकिस्तानके हाई कमिश्नर मुझसे मिलने आए थे। उनका सांप्रदायिक शांति और दोस्तीमें पक्का विश्वास है।

सिक्ख भाई आज मुझसे दो बार मिले। भारत-सरकारके कृपाण-संबंधी हुक्मसे वे दुःखी थे। मैं इसके बारेमें सरकारसे चर्चा करूं, उससे पहले उन्होंने कृपाणकी अपनी जरूरतके बारेमें मुझे लिखकर देनेका वचन दिया है। उन्होंने आगे कहा कि उनके खिलाफ लगाए गए इलजामोंको बहुत नमक-मिर्च लगाकर कहा गया है। हिंदुस्तानी संघमें रहनेवाले मुसलमानोंसे या किसी दूसरी जातसे हमारा कोई झगड़ा नहीं हो सकता। हम तो देशमें कानूनको माननेवाले नागरिक बनकर ही रहना चाहते हैं।

नई दिल्ली, ११–९–'४७

: २५ :

मेरी मूर्ति !

बंबईमें किसी आम जगहपर दस लाख रुपए खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करनेकी बात चल रही है। इस संबंधमें मेरे पास कई आलोचनाभरे पत्र आए हैं। उनमेंसे कुछ तो नम्र हैं और कुछ इतने गुस्सेभरे हैं मानों मैं ही अपनी मूर्ति बनवाकर खड़ी करनेका गुनाह कर रहा होऊं! राईका पर्वत बना देना शायद इन्सानका स्वभाव है। असल बातकी छानबीन तो सिर्फ समझदार लोग ही करते हैं। इस मामलेमें अलोचनाके लिए जगह है। मुझे कहना होगा कि मुझे तो मेरा फोटो भी पसंद नहीं। कोई मेरा फोटो खींचता है तो मुझे

अच्छा नहीं लगता। फिर भी कोई-कोई खींच ही लेते हैं। मेरी मूर्तियां भी बनी हैं। इसके बावजूद अगर कोई पैसे खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करनेकी बात करता है तो यह मुझे अच्छा नहीं लग सकता और खास करके इस वक्त, जब कि लोगोंको खानेको अनाज नहीं मिलता, पहननेको कपड़े नहीं मिलते। हमारे घरोंमें, गलियोंमें गंदगी है, चालोंमें (बस्तियोंमें) इन्सान किसी तरह जिंदगी बिता रहे हैं तब शहरोंको कैसे सजाया जा सकता है? इसलिए मेरी सच्ची मूर्ति तो मुझे रुचनेवाले काम करनेमें है। अगर ये रुपए, ऊपर बताए हुए कामोंमें खर्च किए जायं, तो जनताकी सेवा हो और खर्च किए हुए रुपयोंका पूरा बदला मिले। मुझे उम्मीद है कि यह पैसा इससे ज्यादा लोक-सेवाके कामोंमें खर्च किया जायगा। कल्पना कीजिए कि इतने रुपए अगर अधिक अनाज पैदा करनेमें लगाए जायं तो कितने भूखोंका पेट भरे!

नई दिल्ली, १३-९-'४७

: २६ :

राष्ट्रीय सेवक-संघके सदस्योंसे

दिल्लीमें आते ही मैंने संघके मुख्य कार्यकर्ताओंसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी। संघके विरुद्ध मेरे पास काफी शिकायतें यहां और कलकत्तामें आई थीं। संघके साथ मेरा बरसोंसे संबंध है। स्व० श्रीजमनालालजी बरसों पहले मुझे वर्धामें

संघके एक कैंपमें ले गए थे। उस कैंपको देखकर मैं बहुत खुश हुआ था। वहां कड़ा अनुशासन था। सादगी थी और सवर्ण व असवर्ण सब समान थे। संघको चलानेवाले श्रीहेडगेवारजी बहुत बड़े सेवक थे और सेवाके लिए ही जीते थे। वे तो चले गए, लेकिन संघकी ताकत दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। मैं तो हमेशासे यह मानता आया हूं कि जिस संस्थामें सच्चा त्यागभाव रहता है, उसकी ताकत बढ़ती ही है। अगर त्यागभावके साथ शुद्ध भावना भी रहे तो वह संस्था जगतके लिए फायदेमंद होती है। शुद्धता न हो तो सिर्फ त्यागसे जगतको फायदा नहीं पहुंचता। शुद्ध त्यागके साथ शुद्ध ज्ञान और शुद्ध भावना न हो तो काम पूरा नहीं होता, गिरावट आ जाती है।

आप लोगोंसे भी मैं अपरिचित नहीं हूं। मैं तो इसी वाल्मीकि-बस्तीमें रहता और हमेशा देखा करता था कि आप किस नियम और किस ध्यानसे अपनी प्रार्थना और व्यायाम किया करते थे। आपकी प्रार्थनामें हिंद माताके और हिंदू-धर्मके गौरवकी बात है। मैं तो दक्षिण अफ्रीकासे यह दावा करता आया हूं कि मैं सनातनी हिंदू हूं। मैं 'सनातन' का मूल अर्थ लेता हूं। हिंदू शब्दका सच्चा मूल क्या है, यह बहुत कम लोग जानते हैं। यह नाम हमें दूसरोंने दिया और हमने उसे अपना लिया। धर्मके कई अभ्यासी कहते हैं कि हिंदू-धर्म क्यों कहते हो? इसे आर्य-धर्म कहो या सनातन धर्म कहो। हिंदू-धर्मकी विशेषता रही है, उसकी सहिष्णुता और जिसके संपर्कमें आए उसकी अच्छी चीजोंको पचा लेनेकी ताकत।

आपके गुरुजीसे यहां मेरी मुलाकात हुई। उन्होंने कहा—

"हमारे संघमें गंदगी हो नहीं सकती। हम हिंदू-धर्मकी उन्नति चाहते हैं, पर किसीको नुकसान पहुंचाकर नहीं। स्वरक्षाके लिए हम हमेशा तैयार रहते हैं। संघमें सब भले ही हैं, ऐसा दावा हम नहीं कर सकते। लेकिन हमारी नीति क्या है, यह मैंने आपको सुना दिया।" मैंने आपके गुरुजीसे कहा कि अगर यह सही है तो मैं डंकेकी चोट दुनियाको यह सुना सकता हूं कि आप लोग भले हैं। आपके गुरुजीने यह भी कहा कि बुरे काम करनेवालों, दंभियों और हुकूमतको गिराने-की चेष्टा करनेवालोंके साथ संघका संबंध नहीं है। मैंने कहा कि हुकूमत किसकी मिटावेंगे? हुकूमत तो हमारी अपनी है। हिंद यूनियनमें ज्यादा संख्या हिंदुओंकी है। इसमें कोई शर्मकी बात नहीं। लेकिन अगर हम यह कहें कि यहां हिंदुओंके सिवा दूसरा कोई रह ही नहीं सकता और कोई रहे भी तो उसे हिंदुओंका गुलाम बनकर रहना होगा, तो यह गलत बात है। हिंदू-धर्म ऐसा नहीं सिखाता। मेरे हिंदू-धर्ममें सब धर्म आ जाते हैं। सब धर्मोंका निचोड़ हिंदू-धर्ममें मिलता है। अगर हिंदू-धर्म सबको हजम करनेका काम न करता तो वह इतना ऊंचा न उठ सकता। सब धर्मोंमें उतार-चढ़ाव तो आता ही है। जबसे हिंदू-धर्ममें अस्पृश्यताको स्थान मिला तबसे हम गिरने लगे। इससे हमें कितना नुकसान हुआ, उसे मैं यहां नहीं बताऊंगा। अगर अस्पृश्यता या छूआ-छूतका मैल बना रहा तो हमारे धर्मका नाश हो जायगा। इसी तरहसे अगर हम कहें कि हिंदुस्तानमें सिवा हिंदुओंके सबको गुलाम होकर रहना है, या पाकिस्तानवाले यह कहें

कि पाकिस्तानमें सिवा मुसलमानोंके सबको गुलाम बनकर रहना है तो यह चीज चलेगी नहीं। ऐसा कहकर दोनों अपना धर्म छोड़ते हैं और दोनों अपने-अपने धर्मका नाश करते हैं।

मुल्कके टुकड़े तो हो चुके। सबने यह मंजूर किया, तभी तो ऐसा हुआ। अब उसे दुरुस्त करनेका तरीका क्या है ? एक हिस्सा गंदा बने तो क्या दूसरा भी वैसा ही करे ? बुराईका सामना बुराई द्वारा करनेसे, फिर वह समान मात्रामें हो, या ज्यादा या कम मात्रामें, बुराई मिटती नहीं। बुराईके सामने भलाई करनेसे ही बुराई मिटती है। मैं तो जो मेरे दिलमें है, वही बात कह सकता हूं।

आज हिंदुस्तानकी नाव बड़े तूफानमेंसे गुजर रही है। हमारे जो नेता हुकूमतकी बागडोर लेकर बैठे हैं, उनसे बढ़कर हमारे पास कोई नहीं है। अगर कोई हो तो लाइए। मैं सिफारिश करूंगा कि हुकूमतकी बागडोर उनके हाथमें दे दी जाय। आखिर सरदार तो बूढ़े हो गए हैं। जवाहरलालजी बूढ़े नहीं हैं, लेकिन बूढ़े-से दीखने लगे हैं। वे दोनों हिम्मतके पुतले हैं। भय-जैसी उनके पास कोई चीज नहीं है। वे यथाशक्ति मुल्ककी सेवा कर रहे हैं।

अगर हिंदुस्तानके सब हिंदू एक दिशामें जाना चाहें, चाहे वह गलत ही क्यों न हो, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। लेकिन कोई भी आदमी, फिर वह अकेला ही क्यों न हो, उनके खिलाफ अपनी आवाज उठा सकता है। उन्हें चेतावनी दे सकता है। वही मैं आज कर रहा हूं।

आपका फर्ज है कि आप मन, वचन और कर्मसे अपनी

सरकारको मदद दें। अगर मैं कोई वुरी वात कहता होऊं तो मुझे वताइए। मुझसे कहा जाता है कि आप मुसलमानोंके दोस्त हैं और हिंदू व सिक्खोंके दुश्मन। मुसलमानोंका दोस्त तो मैं १२ वरसकी उम्रसे रहा हूं और आज भी हूं; लेकिन जो मुझे हिंदुओं और सिक्खोंका दुश्मन कहते हैं, वे मुझे पहचानते नहीं। मेरी रग-रगमें हिंदू-धर्म समाया हुआ है। मैं धर्मको जिस तरह समझता हूं, उसी तरह उसकी और हिंदुस्तानकी सेवा पूरी ताकतसे कर रहा हूं। मेरे दिलकी वात मैंने आपको सुना दी है। हिंदुस्तानकी रक्षाका, उसकी उन्नतिका यह रास्ता नहीं कि जो वुराई पाकिस्तानमें हुई उसका हम अनुकरण करें। अनुकरण हम सिर्फ भलाईका ही करें।

अगर पाकिस्तान वुराई ही करता रहा तो आखिर हिंदुस्तान और पाकिस्तानमें लड़ाई होनी ही है। मेरी वात कोई सुने तो यह संकट टल सकता है। अगर मेरी चले तो न तो मैं फौज रखूं और न पुलिस। मगर ये सव हवाई वातें हैं। मैं हुकूमत नहीं चलाता। आज जो चल रहा है, उसमें तो लड़ाईका ही सामान भरा है। क्यों पाकिस्तानसे हिंदू और सिक्ख भाग रहे हैं? पाकिस्तानवाले उन्हें क्यों नहीं मनाते कि यहीं रहो। अपना घर न छोड़ो। आपकी इज्जत और जान-मालकी हम हिफाजत करेंगे? क्यों पाकिस्तानमें एक छोटी-सी लड़कीकी तरफ भी कोई वदनजरसे देखे? इसी तरह क्यों न एक-एक मुसलमान हिंद-यूनियनमें पूरी तरह सुरक्षित रहे?

आपकी संख्या वड़ी है। आपकी ताकत हिंदुस्तानको वरवादीमें लगे तो वह वुरी वात होगी। आपपर जो इलजाम

लगाया जाता है, उसमें कुछ भी सच है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। मैंने तो सिर्फ बता दिया कि किसी चीजका नतीजा क्या हो सकता है। यह संघका काम है कि वह अपने सही कामोंसे इस इलजामको झूठ साबित कर दे।

सवाल—हिंदू-धर्ममें पापीको मारनेकी इजाजत है या नहीं ?

जवाब—है भी और नहीं भी है। जो खुद पापी है, वह दूसरे पापीको सजा कैसे देगा? अगर सब निर्णायक बन जायं तो न्याय किसको मिलेगा? पापीको सजा देना हुकूमतका काम है। आप हुकूमतसे कह दें कि यह आदमी पापी है, दगाबाज है। इसको सजा दीजिए। हुकूमत तो अहिंसा माननेवाली है नहीं। वह दगाबाजोंको गोलीसे उड़ा देगी। मगर यह कह देना कि सारे मुसलमान दगाबाज हैं, ठीक नहीं है, यह हिंदू-धर्म नहीं है।[1]

नई दिल्ली, १६–९–'४७

: २७ :

भारतीय संघके मुसलमानोंसे

कुछ मुसलमान दोस्तोंने गांधीजीसे कहा कि वे दिल्ली शहरके मुस्लिम मोहल्लोंमें जायं, ताकि जो मुसलमान अभी वहां रह रहे हैं, वे

---

[1] भंगी बस्ती (नई दिल्ली) में राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके स्वयं-सेवकोंके समक्ष दिया गया भाषण।

डरकर अपने मकान खाली न कर दें। गांधीजी एकदम राजी हो गए और उन्होंने शामको दरियागंज मुहल्लेसे अपना यह काम शुरू किया। मकानों और दूकानोंकी उजाड़ शक्ल देखकर गांधीजीको दुःख हुआ। इनमेंसे कुछ दूकानें लूट ली गई थीं। करीब सौ मुसलमान आसफअली साहबके मकानमें इकट्ठा हो गए थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि हम हिंदुस्तानमें यूनियनके वफादार नागरिक बनकर रहना चाहते हैं, मगर हम खास तौरपर पुलिसके पक्षपाती बर्तावसे अपनी हिफाजतकी गारंटी चाहते हैं। अपनी हालतका बयान करते हुए कुछ लोगोंकी आंखोंमें आंसू आ गए थे। उन्होंने कहा कि पाकिस्तानके मुसलमानोंने जो कुछ किया उसकी हम ताईद नहीं करते, मगर उनके पापोंका बदला बेगुनाहोंसे नहीं लिया जाना चाहिए। उनके सामने बोलते हुए गांधीजीने कहा—

आप लोग बहादुर बनिए और मजबूतीके साथ कहिए कि चाहे जो हो, हम अपने मकान नहीं छोड़ेंगे। आपको अपनी हिफाजतके लिए एक भगवानको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नहीं रहना चाहिए। मैं अपनी ताकतभर सब कुछ करनेके लिए यहांपर ठहरा हुआ हूं। मैंने नोआखाली, बिहार कलकत्ता और अब दिल्लीमें अपने आपको 'करने या मरने' के दांवपर लगा दिया है। जबतक सच्ची शांति कायम न हो और हिंदू, सिक्ख और मुसलमान, पुलिस और फौजकी मददके बगैर आपसमें भाई-भाईकी तरह रहना तय न कर लें तबतक जो लोग अपने-अपने घर छोड़कर चले गए हैं, उनसे मैं वापिस आनेके लिए नहीं कहूंगा।

मैं जिस तरह हिंदुओं और दूसरोंका दोस्त और सेवक हूं उसी तरह मुसलमानोंका भी हूं। मैं तबतक चैन नहीं लूंगा जबतक हिंद-यूनियनका हर एक मुसलमान, जो यूनियनका

वफादार नागरिक बनकर रहना चाहता है, अपने घर वापिस आकर शांति और हिफाजतसे नहीं रहने लगता और इसी तरह हिंदू और सिक्ख भी अपने-अपने घरोंको नहीं लौटते। मैंने दक्षिण अफ्रीका और हिंदुस्तानमें जिंदगीभर मुसलमानोंकी सेवा की है। मैं खिलाफतके दिनोंकी हिंदू-मुस्लिम-एकताको भूल नहीं सकता। वह एकता टिकी नहीं, मगर उसने यह दिखा दिया कि हिंदुओं और मुसलमानोंमें टिकाऊ दोस्ती कायम हो सकती है। इसीके लिए मैं जीता हूं और काम करता हूं। मैं यह देखनेके लिए पंजाब जा रहा था कि जो हिंदू और सिक्ख पाकिस्तानसे खदेड़ दिए गए हैं, वे अपने-अपने घरोंको वापिस लौट सकें और वहां हिफाजत और इज्जतसे रह सकें। मगर रास्तेमें मैं दिल्लीमें रोक लिया गया और जबतक हिंदुस्तानकी इस राजधानीमें शांति कायम नहीं होती तबतक मैं यहीं रहूंगा। मैं मुसलमानोंको यह सलाह कभी नहीं दूंगा कि वे लोग अपने घर छोड़कर चले जायं, भले ही ऐसी वात कहनेवाला मैं अकेला ही क्यों न होऊं। अगर मुसलमान लोग हिंदुस्तानके कानून माननेवाले और वफादार नागरिक बनकर रहें तो उन्हें कोई भी नहीं छू सकता। मैं सरकार नहीं हूं, मगर जो सरकारमें हैं, उनपर मेरा असर है। मैंने उन लोगोंसे इस विषयपर लंबी चर्चाएं की हैं। वे इस बातको नहीं मानते कि हिंदुस्तानमें मुसलमानोंके लिए कोई जगह नहीं है, या अगर मुसलमान यहां रहना चाहें, तो उन्हें हिंदुओंका गुलाम रहकर रहना पड़ेगा। कुछ लोगोंने कहा है कि सरदार पटेलने मुसलमानोंके पाकिस्तानमें जानेकी

वातकी ताईद की है। जव सरदारसे मैंने यह वात कही तो वे गुस्सा हुए। मगर साथ ही उन्होंने मुझसे कहा कि इस शकके लिए मेरे पास कारण हैं कि हिंदुस्तानके मुसलमानोंकी वहुत वड़ी तादाद हिंदुस्तानके प्रति वफादार नहीं है। ऐसे लोगोंका पाकिस्तानमें चले जाना ही ठीक होगा। मगर अपने इस शकका असर सरदारने अपने कामोंपर नहीं पड़ने दिया। मैं पूरी तौरपर मानता हूं कि जो मुसलमान यूनियनके नागरिक वनना चाहते हैं, उन्हें सवसे पहले यूनियनके प्रति वफादार होना ही चाहिए और उन्हें अपने देशके लिए सारी दुनियासे लड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। जो लोग पाकिस्तान जाना चाहते हैं, वे ऐसा करनेके लिए आजाद हैं। मैं सिर्फ यही चाहता हूं कि एक भी मुसलमान, हिंदुओं या सिक्खोंके डरसे यूनियन न छोड़े। दिल्लीके मुसलमानोंने अपने लिखित ऐलानके जरिए मुझे भरोसा दिलाया है कि वे हिंदुस्तानी संघके वफादार नागरिक हैं। जिस तरह मैं दूसरोंसे उम्मीद करता हूं कि वे मेरी वातोंपर भरोसा करें, उसी तरह मैं भी उनकी वातोंपर भरोसा करूंगा। ऐसी हालतमें सरकारका फर्ज है कि वह इन लोगोंकी हिफाजत करे। अगर मुझे मुसलमानोंको हिफाजतसे रखनेमें कामयावी न मिली, तो कम-से-कम मैं जिंदा नहीं रहना चाहूंगा। वुराई जहां कहीं भी हो, उसे तो खत्म करना ही होगा। भगाई हुई औरतों-को लौटाया जाय और जवरदस्ती धर्म वदलनेके मामलोंको रद समझा जाय। पाकिस्तानके हिंदू और सिक्ख और पूर्वी पंजावके मुसलमान फिरसे अपने-अपने घरोंमें वसाए जायं।

पाकिस्तान और यूनियनमें वे ऐसी हालत पैदा करें कि एक छोटी लड़की भी अपने आपको असुरक्षित न समझे, फिर उसका चाहे जो मजहब हो। खलिकुज्जमा साहब और मुज-फ्फर नगरके मुसलमानोंके बयान पढ़कर मुझे खुशी हुई है। मगर पाकिस्तान रवाना होनेसे पहले मुझे दिल्लीकी आग बुझा-नेमें मदद करनी ही होगी। अगर हिंदुस्तान और पाकिस्तान हमेशाके लिए एक दूसरेके दुश्मन बन जायं और आपसमें जंग छेड़ दें, तो ये दोनों ही उपनिवेश नष्ट हो जायंगे और बड़ी मुश्किलोंसे हासिल की हुई अपनी आजादीको बहुत जल्दी खो देंगे। वह दिन देखनेके लिए मैं जिंदा नहीं रहना चाहता। मौलाना अहमद सईदने मुसलमानोंसे अपील की है कि वे अपने बगैर लाइसेंसके हथियार सरकारको सौंप दें।

दरियागंज छोड़नेसे पहले लोग गांधीजीको कुछ पर्दानशीन औरतोंके पास ले गए। उन औरतोंने कहा कि हमारी सारी उम्मीदें आपपर लगी हुई हैं। गांधीजीने उन्हें जवाब दिया :

आपको एक खुदाको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नहीं रहना चाहिए। अपनी ओरसे मैं भरसक कोशिश कर रहा हूं।

दरियागंज-मस्जिद दिल्ली, १९-९-'४७

: २८ :

मेरा धर्म

यह शीर्षक सिर्फ इस बातपर विचार करनेके लिए है कि

'हरिजनसेवक' वगैरह अखवार चलाने न चलानेके वारेमें मेरा धर्म क्या है। मेरे सवालके जवावमें पाठकोंकी तरफसे मेरे पास काफी तादादमें पत्र आए हैं। उनमेंसे ज्यादातर लोग चाहते हैं कि ये अखवार जारी रहें। इन लेखकोंका भाव यह है कि इस वक्त उन्हें अलग-अलग विषयोंपर मेरा मत जाननेकी इच्छा है। यानी मेरे मरनेपर इन अखवारोंकी जरूरत रहेगी या नहीं, यह एक सवाल है।

मेरी मौत तीन तरहसे हो सकती है :

१. यह शरीर छूट जाय।

२. आंखकी पुतली अपना काम करती रहे, मगर शरीर या मन किसी कामके न रहें।

३. यह शरीर टिका रहे, मन और वुद्धि भी काम देते रहें, मगर मैं जनसेवाके सारे क्षेत्रोंसे हट जाऊं।

पहले प्रकारकी मौत तो हर देहधारीके लिए है—कोई आज मरता है तो कोई कल। इसलिए इसके वारेमें क्या कहा जा सकता है ?

दूसरे प्रकारकी मौत तो किसीको न मिले ! ऐसी जिंदगी धरतीपर वोझकी तरह है। ऐसा होता हो या न होता हो, मगर अपने लिए तो मैं ऐसी मौत नहीं चाहता।

अव विचारने लायक तीसरी मौत ही रह जाती है। कई पाठक मानते हैं कि मेरा प्रवृत्तिकाल अव वीता हुआ समझना चाहिए। पंद्रहवीं अगस्तके वादसे नया युग शुरू हुआ है। उसमें मेरी जगह कहीं भी नहीं है। इस कथनमें मुझे गुस्सा

नजर आता है, इसलिए इसका मुझपर कोई असर नहीं। ऐसी सलाह देनेवाले बहुत थोड़े हैं।

इसलिए मुझे इस सवालपर स्वतंत्र विचार करनेकी जरूरत है। 'हरिजन' अखबार नवजीवन ट्रस्टकी देखरेखमें निकलते हैं। ट्रस्टी-मंडल चाहे तो इन अखबारोंको आज बंद कर सकता है। उसे पूरा अधिकार है। मगर वे नहीं चाहते कि ये बंद हों। मेरा जीवन लोकसेवाके काममें ही बीत रहा है। अकर्ममें भी कर्म देखनेकी शक्ति अभी मुझमें नहीं है। इसलिए जबतक सांस चलती है तबतक तो मेरे काम जारी रहेंगे। मेरी प्रवृत्तियों-को अलग-अलग हिस्सोंमें बांटा नहीं जा सकता। सबका मूल एक ही है, फिर उसे सत्य कहो या अहिंसा। इसलिए ये अखबार जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहेंगे। "मेरे लिए एक कदम काफी है।"[1]

नई दिल्ली, २२–९–'४७

: २६ :

उपवासका अर्थ

एक भाई लिखते हैं—

"मुझे लगता है कि हर कदमपर अपने प्राणोंकी बाजी लगा देना

---

[1] मूल गुजरातीमें इस वाक्यके लिए यह चरण है—"मारे एक डगलुं बस थाय।"

आपके लिए आखिरी और कुदरती इलाज भले हो, मगर उसका उपयोग मरीजको इंजेक्शन देकर या उसमें प्राणवायु भरकर उसे जिंदा रखनेकी कोशिश करने-जैसा ही है।"

ये शब्द प्यारसे और दुःखसे लिखे गए हैं। फिर भी मुझे कहना पड़ेगा कि लेखकने इस विषयपर पूरा विचार नहीं किया। मेरा भला चाहनेवाले दूसरे बहुतसे भाइयोंका भी शायद यही विचार हो, यह समझकर मैं खुले तौरपर इसका जवाब देता हूं।

खत लिखनेवाले भाईकी उपमा यहां लागू नहीं होती। प्राणवायु भरने और सुई लगानेका इलाज सिर्फ बाहरी इलाज है। और उसका प्रयोग शरीरपर, उसे कुछ ज्यादा समयतक टिकाए रखनेके लिए ही होता है। इसलिए वह क्षणिक है। वास्तवमें देखा जाय तो इस इलाजके न करनेमें इन्सान कुछ खोता नहीं है। शरीरको अमर तो किया ही नहीं जा सकता। उसकी उमर दो दिन बढ़ा देनेसे कोई बड़ा फायदा नहीं होता।

उपवास किसीके शरीरपर असर डालनेके लिए नहीं किया जाता। वह तो दिलको छूता है। इसलिए उसका संबंध आत्मासे है। इससे उपवासका असर क्षणिक नहीं होता। वह टिकाऊ होता है। उपवास करनेवालेमें इसके लिए नैतिक योग्यता है या नहीं, यह जुदी बात है। यहां हमें इसपर विचार नहीं करना है।

अपने जितने उपवासोंकी मुझे याद है, उनमेंसे एक ही ऐसा था, जिसमें उपवास करनेमें तो मैंने भूल नहीं की थी,

मगर उसमें मैंने बाहरी इलाज मिला दिया था, जो उपवासका विरोधी है। यह भूल न हुई होती तो मुझे यकीन है कि उसका नतीजा अच्छा ही निकलता। मेरा मतलब उस उपवाससे है, जो मैंने राजकोटके स्वर्गीय ठाकुर साहबके विरोधमें किया था। मैं संभल गया, इसलिए अपनी भूल सुधार सका और एक भयंकर नतीजा टल गया।

मेरा आखिरी उपवास कलकत्तामें २-३-४ सितंबरको हुआ था। उसका बहुत अच्छा नतीजा निकला। उसका संबंध आत्मासे होनेकी वजहसे मैं उसे टिकाऊ मानता हूं। मगर यह असर टिकाऊ हुआ या नहीं, यह तो समय ही बतलाएगा। यह बात उपवास करनेवालेकी पवित्रतापर और उसके ज्ञानपर निर्भर है। इसकी जांच करना यहां अप्रासंगिक होगा। यह जांच मैं खुद कर भी नहीं सकता। कोई निष्पक्ष और योग्य आदमी ही कर सकता है और वह भी मेरे मरनेके बाद।

नई दिल्ली, २५-९-'४७

: ३० :

हिंदुस्तानी

काकासाहब कालेलकर एक खतमें लिखते हैं—

"यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफादार रहेंगे तो क्या वे हिंदुस्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिंदी-उर्दू दोनों लिपियां सीखेंगे?

इस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे तो हिंदुस्तानी प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आजाद क्या अपने ख़यालात नहीं बता सकते ?"

काकासाहब जो कहना चाहते हैं वह नई बात नहीं है। लेकिन आजाद हिंदमें यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोंसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिंदुस्तानकी तरफ वफादारी रखते हैं और हिंदुस्तानमें खुशीसे रहना चाहते हैं तो उनको दोनों लिपियां सीखनी चाहिए।

हिंदुओंकी तरफसे कहा जाता है कि उनके लिए पाकिस्तान-में जगह नहीं, सिर्फ हिंदुस्तानमें है। अगर कहीं ऐसा मौका आवे कि पाकिस्तान और हिंदुस्तानके बीच लड़ाई छिड़ जाय तो हिंदुस्तानके मुसलमानोंको पाकिस्तानसे लड़ना होगा। यह ठीक है कि लड़ाईका मौका आना ही नहीं चाहिए। आखिरमें दोनों हुकूमतोंको एक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। एक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिए। दो हकूमतें होते हुए भी काफी चीजें दोनोंके बीच एक ही हैं। अगर वे दुश्मन बन जायं तब तो कोई भी चीज एक नहीं हो सकती। दोनोंमें दिलकी दोस्ती रहे तब तो प्रजा दोनोंकी तरफ वफादार रह सकती है। यों तो दोनों राज एक ही संस्थाके सदस्य हैं। उनमें दुश्मनी हो ही कैसे सकती है? लेकिन इस चर्चामें पड़नेकी यहां कोई जरूरत नहीं।

हिंदुस्तानमें सबकी बोली एक ही हो सकती है। मैं तो एक कदम आगे बढ़कर कहता हूं कि अगर दोनों राज एक-दूसरेके दुश्मन नहीं, बल्कि दिलसे दोस्त बनते हैं तो दोनों तरफ

सब नागरी और उर्दू लिपिमें लिखेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि उर्दू जबान या हिंदी जबान रह ही नहीं सकती; लेकिन अगर दोनोंको या सब धर्मियोंको दोस्त बनना है तो सबको हिंदी और उर्दूके संगमसे जो आम बोली बन सकती है, उसमें ही बोलना है। और, उसी बोलीको उर्दू या नागरी लिपिमें लिखना है। कम-से-कम हिंदुस्तानमें रहनेवाले मुसलमानोंका इम्तिहान तो इसमें हो जाता है और यही बात हिंदू, सिक्ख वगैरहको भी लागू होती है। लेकिन मैं ऐसा नहीं कहूंगा कि मुसलमान अगर दोनों लिपियां नहीं सीखते तो उर्दू और हिंदीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। मुसलमान दोनों लिपियां सीखें या न सीखें, तो भी हिंदू तथा हिंदुस्तानके दूसरे धर्मियोंको दोनों लिपियां सीखनी चाहिए। आजकी जहरीली हवामें यह सादी-सी बात भी शायद लोग नहीं समझ सकेंगे। उर्दू लिपिका और उर्दू लफ्जों-का हिंदू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहें तो कर तो सकते हैं, लेकिन उससे हम बहुत कुछ खोएंगे। इसलिए जिन लोगोंने हिंदुस्तानी प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हों या करोड़ों, वे इस सीधी-सादी बातको छोड़ नहीं सकते।

मैं इसमें भी सहमत हूं कि मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब और हिंदुस्तानके दूसरे ऐसे मुसलमानोंको ऐसी चीजोंमें नमूना बनना चाहिए। अगर वे न बनें तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक्त आया है। ईश्वर हमको सन्मति दे!

नई दिल्ली, २७–९–'४७

: ३१ :

भयंकर उपमा

एक भाई, जिनके नामसे जान पड़ता है कि उनकी मातृ-भाषा हिंदी है, अंग्रेजीमें लिखे गए अपने खतमें मुझे इस तरह लिखते हैं--

"आपने जो लगातार इस तरहकी अपीलें की हैं कि मुसलमानोंको अपने भाई समझो और उनकी हिफाजतकी गारंटी दो, ताकि वे यहांसे पाकिस्तान न चले जाएं, उसके सिलसिलेमें मैं एक उदाहरण देता हूं--जाड़ेके दिनोंमें एक बार कोई आदमी कहीं जा रहा था। रास्तेमें उसे एक सांप पड़ा हुआ दिखाई दिया, जो ठंडसे ठिठुर गया था। उस आदमीको दया आई और सांपको गर्मी पहुंचानेके इरादेसे उसने उसे उठाकर अपनी जेबमें रख लिया। गर्मी मिलनेसे सांप सचेत हुआ और सबसे पहला काम जो उसने किया वह यह था कि उसने अपने रक्षकके ही शरीरमें अपने जहरीले दांत गड़ा दिए और उसे मार डाला।"

इन भाईने गुस्सेमें आकर इस भयंकर उपमाका उपयोग किया है। एक इन्सानको, चाहे वह कितनाही गिरा हुआ हो, जहरीले सांपकी उपमा देना और फिर उसके साथ वहशियाना बरताव करना वास्तवमें बुरी बात है। थोड़े या ज्यादा लोगोंकी गल्तियोंकी वजहसे उस धर्मके करोड़ों इन्सानोंको जहरीले सांप समझना मुझे हद दरजेका पागलपन जान पड़ता है। खत लिखनेवाले भाईको याद रखना चाहिए कि ऐसे पागल और कट्टर मुसलमान पड़े हैं, जो हिंदुओंके बारेमें यही उपमा

काममें लाते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी हिंदू सांप कहलाना पसंद करेगा।

किसी आदमीको भाई समझनेका यह मतलब नहीं है कि जब वह दगावाज साबित हो तब भी उसपर भरोसा किया जाय। और इस डरसे किसी आदमीको और उसके परिवारको मार डालना बुज़दिलीकी निशानी है कि वह आदमी दगाबाज साबित हो सकता है। जरा ऐसे समाजका चित्र अपने सामने खड़ा कीजिए, जिसमें हर आदमी अपने साथीका न्यायाधीश बनता है। मगर हिंदुस्तानके कुछ हिस्सोंमें हमारी ऐसी ही करुण स्थिति हो गई है।

आखिरमें मैं सांपोंकी जातिके साथ इन्साफ करनेके लिए लोगोंमें फैले हुए एक मामूली वहमको सुधार दूं। जानकार लोग कहते हैं कि ८० फीसदी सांप पूरी तरह निर्दोष होते हैं और कुदरतके उपयोगी जीवोंमें उनकी गिनती की जा सकती है।

नई दिल्ली, ३-१०-'४७

: ३२ :

उदासीका कोई कारण नहीं

बरसगांठकी मुबारकवादीके अनेक तार मेरे पास आए हैं। उनमेंसे एकमें मुझे यह सलाह दी गई है—

"क्या मैं कहूं कि मौजूदा परिस्थितिमें आपको उदास नहीं होना

चाहिए ? मुझे तो लगता है कि जो खून-खराबी आजकल हो रही है, वह ईश्वरी योजनाको हटानेके लिए बुरी ताकतोंकी आखिरी कोशिश है। दुनियामें जो विषम परिस्थिति बढ़ती और फैलती जा रही है उसे अहिंसाके द्वारा मिटानेमें हिंदुस्तानको ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लेना है। ईश्वरी योजनाको पूरी करनेके लिए आज दुनियामें आप अकेले व्यक्ति हैं।"

यह तार मेरे प्रति प्रेमकी निशानी है, ज्ञानकी नहीं। आइए, हम इसकी छानबीन करें।

मेरी आजकी मानसिक स्थितिको उदासी कहना गलती है। मैंने सिर्फ सचाईका बयान किया है। मुझमें ऐसा समझने-का झूठा अभिमान नहीं है कि ईश्वरी योजना सिर्फ मेरे ही द्वारा पूरी हो सकती है। मैं ईश्वरके हाथमें, उसकी योजना पूरी करनेके लिए जितना योग्य हो सकता हूं, उतना ही अयोग्य क्यों नहीं हो सकता ? कमजोर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमें भगवानने मुझे साधन भले बनाया हो, मगर आजाद बनी हुई और ताकतवर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमें मैं अयोग्य क्यों नहीं साबित हो सकता ? मुमकिन है कि आखिरके बहुत बड़े कामके लिए मुझसे ज्यादा बलवान और ज्यादा दूरदर्शी कोई दूसरा आदमी उस ईश्वरके मनमें हो ! मैं जानता हूं कि ये सब महज कल्पनाएं हैं। ईश्वरकी मर्जी पूरी तरहसे जाननेकी ताकत उसने किसीको नहीं दी। दयाके इस अपार सागरमें हम सब बूंदके बराबर हैं। बूंद भला सागरको कैसे नाप सकती है ?

बेशक, आदर्श तो यह होना चाहिए कि मैं न तो एक सौ

पच्चीस बरस जीनेकी इच्छा रखूं और न आजकी विरोधी हालतोंको देखकर मरना चाहूं। अगर मैं आदर्शतक पहुंचा होऊं तो मेरी सारी इच्छाएं भगवानकी महान् इच्छामें समा जानी चाहिए। मगर आदर्श हमेशा आदर्श ही रहेगा। आदर्श जब सच्चा होता है तब वह आदर्श नहीं रह जाता। इसलिए इन्सान सिर्फ इतना ही कर सकता है कि वह आदर्शतक पहुं-चनेमें अपनी कोई कोशिश बाकी न रखे। अपने बारेमें मैं इतना दावा कर सकता हूं कि मुझमें जितनी भी ताकत है, उसका पूरा उपयोग मैं आदर्शके नजदीक पहुंचनेमें कर रहा हूं।

अगर मैंने १२५ बरस जीनेकी अपनी इच्छाको खुले आम जाहिर करनेकी ढिठाई की थी तो इस विषम परिस्थितिमें उतने ही खुले तौरपर यह इच्छा बदलनेकी नम्रता मुझमें होनी ही चाहिए। मैंने इससे न कुछ ज्यादा किया, न कम। न इसके पीछे किसी किस्मकी उदासी ही थी। शायद 'लाचारी' शब्द मेरी हालतको ज्यादा सही रूपमें बयान कर सकता है। इस लाचारीकी हालतमें इस क्षणिक और दुःखी दुनियासे भग-वान मुझे उठा ले, ऐसी पुकार मैं जरूर करता हूं। मैं उससे मांगता हूं कि जो पागलपन हम लोगोंमें इस समय फैल रहा है, उसका साक्षी मुझे न बनाए, फिर भले ही इस पागल-पनसे भरा हुआ इन्सान अपनेको मुसलमान, हिंदू या दूसरा कोई भी धर्म माननेवाला कहनेकी ढिठाई क्यों न करता हो। फिर भी मेरी आखिरी प्रार्थना तो यही है और रहेगी, "हे नाथ ! मेरी नहीं, बल्कि तेरी ही इच्छाका

साम्राज्य इस जगतमें फैले।" अगर भगवानको मेरी जरूरत होगी तो वह अभी कुछ समयतक और इस धरतीपर मुझे रखेगा।

नई दिल्ली, ५–१०–'४७

: ३३ :

एक विद्यार्थीकी उलझन

एक विद्यार्थीने अपने शिक्षकको एक खत लिखा था। उसका नीचेका हिस्सा शिक्षकने मेरी राय जाननेके लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थीका खत अंग्रेजीमें है। उसकी मातृ-भाषा क्या होगी, यह मैं नहीं जानता।

"मुझे दो बातोंने घेर लिया है: एक तरफसे मेरे देश-प्रेमने और दूसरी तरफसे तेज विषय-वासनाने। इससे मुझमें विरोधी भावनाएं पैदा होती हैं और मेरे निर्णय घड़ी-घड़ी बदलते रहते हैं। मुझे अपने देशका अव्वल-दर्जेका सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनियाका आनंद भी लूटना है। मुझे यह कबूल करना चाहिए कि ईश्वरमें मेरी श्रद्धा नहीं है, हालांकि कितनी ही बार मुझे ईश्वरका डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मैं क्या जानूं कि इस जीवनके बाद मेरा क्या होनेवाला है? मैंने बहुत-सी जलती चिताएं देखी हैं—आखिरी चिता मैंने अपनी मान ली है। जलती चिताके दृश्यने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होंगे? यह विचार भी मैं सहन नहीं कर सकता। किसी घायलको देखता हूं तो मेरे सिरमें चक्कर आने लगता है। बादमें मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती

है कि तेरे शरीरका भी किसी दिन यही हाल होगा ! य
किसी शरीरको इस हालतमेंसे मुक्ति नहीं मिलती।
लगता है कि मौतके बाद जीवन नहीं है और इसलि
डर लगता है।

"इस हालतमें मेरे पास सिर्फ दो ही रास्ते हैं, या तो
फँसकर जलता रहूं या दुनियाके भोग-विलासमें पड़कर
ख्यालतक न करूं। दूसरे किसीके सामने मैंने यह बात
लेकिन आपके सामने कबूल करता हूं कि मैंने तो दुनियाका
रास्ता ही पकड़ा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी कीमतपर
ही हैं। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मनमें उसके
लेकिन मैं देखता हूं कि उस प्रेमकी जड़में उसका मरना
मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरनेसे मैं अकेला रह गया
तो कोई गुत्थी सुलझानेको रहती नहीं और जिंदा आदमीके
जिंदगी ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेममें मेरी श्रद्धा न
प्रेमके नामसे पहचाना जाता है, वह प्रेम तो सिर्फ विष
है। अगर शुद्ध प्रेम-जैसी कोई चीज होती तो अपनी प
अपने मां-बापमें मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था;
तो इससे बिल्कुल उलटी थी। मां-बापके बनिस्बत पत्नीमें
अधिक था। यह सच है कि मैं अपनी पत्नीके प्रति सच्
उसे मैं यह गारंटी नहीं दिला सकता था कि उसके म
उसकी तरफ मेरा प्रेम बना रहेगा। उसके मरनेके बा
होगा, वह तो उसके न रहनेसे पैदा होनेवाली मुसीबतोंक
आप इसे एक तरहकी बेरहमी कह सकते हैं। जो हो

खतके इस हिस्सेमें तीन बातें आती हैं। एक, विषय-वासना और देश-प्रेमके बीच खड़ा होनेवाला विरोध; दूसरी, ईश्वरमें और मरनेके बादके भविष्यमें अश्रद्धा, और तीसरी, शुद्ध प्रेम और विषय-वासनाका द्वंद्व-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढंगसे रखी मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोगकी इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम बहते प्रवाहमें खिंच जानेके समान है। यहां देश-प्रेमका अर्थ होगा सत्ता पानेके प्रपंचमें पड़ना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करनेका मेल बैठ सके। इस तरहके बहुतसे उदाहरण मिल सकते हैं। देश-प्रेमका मेरा अर्थ यह है कि प्रजाके गरीब लोगोंके लिए भी हमारे दिलमें प्रेमकी आग जलती हो। यह आग विषय-वासना-जैसी चीजको हमेशा जला डालती है। इसलिए मैं देश-प्रेम और विषय-वासनाके बीचमें कोई झगड़ा देखता ही नहीं। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासनाको जीत लेता है। ऐसे विश्व-प्रेमको जो वृत्ति तोड़ सके, उसे पोसनेका समय भी कहां बच सकता है? इसके खिलाफ जिस आदमीको विषय-वासनाने अपने वशमें कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वरके बारेमें और मरनेके बादके भविष्यके बारेमें अश्रद्धा भी ऊपरकी वासनामेंसे ही पैदा होती है, क्योंकि यह वासना औरत और मर्दको जड़से हिला देती है। अनिश्चय उन्हें खा जाता है। विषय-वासनाके नाश हो जानेपर ही ईश्वरपर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनों चीजें साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

तीसरी उलझनमें पहलीको ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नीके बीच शुद्ध प्रेम हो तो वह दूसरे सब प्रेमोंकी अपेक्षा आदमीको ईश्वरके ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नीके बीचके प्रेममें विषय-वासना मिल जाती है तब वह मनुष्यको अपने भगवानसे दूर ले जाती है। इसमेंसे एक सवाल पैदा होता है : अगर औरत और मर्दका भेद पैदा न हो, विषय-भोगकी इच्छा मर जाय, तो शादीकी जरूरत ही क्या रह जाय ?

अपने खतमें विद्यार्थीने ठीक ही कबूल किया है कि अपनी पत्नीकी तरफ उसका स्वार्थभरा प्रेम था। जो वह प्रेम निःस्वार्थ होता तो अपनी जीवन-संगिनीके मरनेके बाद विद्यार्थीका जीवन ज्यादा ऊंचा उठता; क्योंकि साथीके मरनेके बाद उसकी यादमेंसे, पिछड़े हुए लोगोंकी सेवामें उस भाईकी लगन ज्यादा बढ़ी होती ।

नई दिल्ली, १२–१०–'४७

: ३४ :

एक कड़ुआ खत

एक मुसलमान दोस्त लिखते हैं :—

"मैं राष्ट्रीय विचारोंवाला एक मुसलमान हूं। जिंदगीभर—अगर मेरे २१ सालके जीवनको इन शब्दोंमें जाहिर करने दिया जाय तो—मैंने हिंदू और मुसलमानकी जुबानमें कभी नहीं सोचा। मगर मेरे बड़े

भाई, वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने इस बातकी बड़ी कोशिश की कि मैं हिंदू और मुसलमानोंमें फर्क करूं। अपनी जातिके खिलाफ गद्दारी करनेवाला होनेकी वजहसे जालंधरके इस्लामिया कालेजमें मुझे भर्ती नहीं किया गया।

"मेरे वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने अप्रेलमें जालंधर छोड़ दिया, मगर मैं उनके साथ नहीं गया, क्योंकि पूर्वी पंजाब और उससे भी ज्यादा सारे हिंदुस्तानको अपना मैं वैसा ही देश मानता था जैसा कि वह दूसरे फिरकेके मेरे दोस्तोंके लिए था। मगर अगस्तकी वहशियाना वारदातोंने मुझे इतना नाउम्मीद कर दिया है कि मैं बयान नहीं कर सकता। जनवरी, १९४६में जब आजाद हिंद फौजके लोगोंपर मुकदमा चल रहा था तब जिन लड़कोंने मेरे साथ जलूस निकाला था, वे भी मेरी जान लेना चाहते थे। आखिरकार मैं उनके लिए एक मुसलमान ही था, जिसकी जान लेनेसे वे अपनी जातिके लोगोंकी वाहवाही हासिल कर सकते थे। इसलिए मुझे अपनी जान बचानेके लिए दिल्ली भागना पड़ा। मेरा ख्याल था कि जो लोग पाकिस्तानके बजाय अखंड हिंदुस्तानमें यकीन करते हैं, उनके साथ यहां ऐसा बरताव नहीं किया जायगा। मगर यहांकी हालत और भी बुरी है। जिन दोस्तोंके साथ मैं यहां ठहरा हूं, वे भी मुझे शककी निगाहसे देखते हैं।

"बराबरी और आजादीके मेरे प्यारे फरिश्ते, अब मुझे बताओ कि मैं अपने ज़मीर (विवेक) के खिलाफ़ अपने मां-बापके पास, जिंदगीभर उनकी हँसीका साधन बननेके लिए पच्छिमी पाकिस्तान चला जाऊं, या हिंदुस्तानमें बंधकके बतौर रहूं, जहांके लोग, जानवर बने हुए मेरे धर्म-भाइयोंके पापोंका बदला मुझे मारकर लेना चाहते हैं।"

ऊपरके खतको मैंने थोड़ा संक्षेप कर दिया है। उसमें कड़ुआहटको छुआ नहीं गया है। यह मानते हुए कि उस

खतकी बातें सही हैं, उसमें कड़ुआहटके लिए काफी गुंजाइश है। बेहद विरोधी परिस्थितियोंमें ही किसी आदमीकी जांच होती है। भले दिनोंके दोस्त बहुतसे होते हैं। मगर वे किसी कामके नहीं होते। 'जो जरूरतपर काम आए, वही सच्चा दोस्त है।' क्या एक ही मजहबको माननेवाले लोग आपसमें ठीक उसी तरह नहीं लड़े हैं, जिस तरह आज हिंदू और मुसलमान लड़ रहे हैं ? जब आम जनताको इतने बरसोंसे लगातार नफरतका पाठ पढ़ाया जाता रहा हो तब उससे इसके सिवा और क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह आपसमें कट मरे। अगर खत लिखनेवाले भाई अपनी राष्ट्रीयताको ठीक समझते हैं तो उन्हें इस आड़े समयका सामना करना चाहिए। हमें उन लोगोंकी नकल कभी नहीं करनी चाहिए जो कसौटीके वक्त अपनी श्रद्धा छोड़ देते हैं। इसलिए इन खत लिखनेवाले भाईको यह सलाह देते हुए मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि वे अपने पुराने दोस्तोंके द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिए जानेका खतरा उठाकर भी अपने घर जालंधर लौट जायं। ऐसे शहीदोंसे ही हिंदू-मुस्लिम-एकता कायम होगी। अगर वे भाई अपने शब्दोंको सच साबित करते हैं तो मैं पहलेसे कह रखता हूं कि उनके मा-बाप खुले दिलसे उनका स्वागत करेंगे। हम इन्सानोंकी किस्मतमें यही बदा है कि अपराधीके पापोंका फल निरपराधीको भोगना पड़े। यही ठीक भी है। निरपराधियोंके मुसीबतें सहनेकी वजहसे ही दुनिया ऊपर उठती और बेहतर बनती है। इस खुले सत्यको बार-बार

दोहरानेके लिए मेरा आजादी और समताका फरिश्ता होना जरूरी नहीं है।
नई दिल्ली, १३–१०–'४७

: ३५ :

अकर्ममें कर्म

एक भाई लिखते हैं :

"आपने 'मेरा धर्म' लेखमें लिखा है, 'अकर्ममें कर्म' देखनेकी हालतको मैं पहुंचा नहीं हूं। इस वचनके मानी कुछ विस्तारसे बताएंगे तो अच्छा होगा।"

एक स्थिति ऐसी होती है, जब आदमीको विचार जाहिर करनेकी जरूरत नहीं रहती। उसके विचार ही कर्म बन जाते हैं। वह संकल्पसे कर्म कर लेता है। ऐसी स्थिति जब आती है तब आदमी अकर्ममें कर्म देखता है, यानी अकर्मसे कर्म होता है, ऐसे कहा जा सकता है। मेरे कहनेका यही मतलब था। मैं ऐसी स्थितिसे दूर हूं। उसतक पहुंचना चाहता हूं। उस ओर मेरा प्रयत्न रहता है।
नई दिल्ली, १६–१०–'४७

: ३६ :

एक पहेली

एक भाई लिखते हैं—

"मजाकमें भी दो उपनिवेशोंके बीच लड़ाई होनेकी चर्चा न उठे तो अच्छा। मगर जब आपने इसका जिक्र करते हुए यहांतक कहा है कि इन दो राज्योंके बीच अगर लड़ाई हो तो यहांके मुसलमानोंको पाकिस्तानके खिलाफ़ लड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए, तब सवाल यह उठता है कि उस हालतमें पाकिस्तानके हिंदुओं और सिक्खोंका भी अपने राज्यकी तरफ यही फर्ज होगा या नहीं? अगर सांप्रदायिक सवालोंपर ही लड़ाई हो तो फर्जको समझानेकी चाहे जितनी कोशिश की जाय, वफादारीका टिकना नामुमकिन मालूम होता है। मगर सांप्रदायिक सवालोंको छोड़कर और किसी कारणसे लड़ाई हो तो यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि यहांके मुसलमानों और पाकिस्तानके गैर-मुसलमानोंको पाकिस्तानका ही विरोध करना चाहिए।"

हमारे दो राज्योंके बीच लड़ाईकी संभावनाकी चर्चा मजाकमें तो उठाई ही नहीं जा सकती। 'भी' क्रिया-विशेषण यहां बेमौजूं है; क्योंकि ऐसी संभावना सचमुच मालूम पड़े, तभी इसपर चर्चा करना फर्ज हो जाता है। और तब भी चर्चा न करना बेवकूफी कहा जायगा।

जो नियम हिंदुस्तानके मुसलमानोंके लिए है, वही पाकिस्तानके गैर-मुस्लिमोंपर भी लागू होगा। मैं तो अपने भाषणोंमें और यहां होनेवाली चर्चाओंमें अपनी यह राय जाहिर कर चुका हूं।

वेशक, यह राय काफी सोच-विचारके वाद कायम हुई है। वफादारी गैर-कुदरती तरीकेसे खड़ी नहीं की जा सकती। अगर परिस्थितियोंसे वह पैदा नहीं होती तो वह कभी भी पैदा नहीं होगी, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसे वहुतसे लोग हैं, जो मानते हैं कि ऐसी वफादारी मुमकिन ही नहीं है और इसलिए वे मेरी रायको हँसीमें उड़ा देते हैं। मेरी समझमें इसमें हँसने लायक कुछ भी नहीं है। हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोंके खिलाफ तभी लड़ सकेंगे, जव वे ऐसा करना अपना फर्ज समझेंगे। यानी जव उनको यह साफ महसूस होगा कि उनके साथ तो हिंदुस्तानमें इन्साफका वरताव होता है और पाकिस्तानमें हिंदू वगैरह अल्पसंख्यकोंके साथ वेइन्साफी हो रही है। ऐसी हालत मेरी कल्पनासे वाहर नहीं है।

इसी तरह अगर पाकिस्तानके हिंदू वगैरह गैर-मुस्लिमोंको साफ तौरपर मालूम पड़े कि उनके साथ इन्साफ हो रहा है, वे सुखसे और वेफिकरीसे वहां रहते हैं और हिंदुस्तानके मुसलमानोंके साथ वेइन्साफी होती है, तो पाकिस्तानकी हिंदू वगैरह अल्पसंख्यक जातियां कुदरतन हिंदुस्तानके हिंदुओंसे लड़ेंगी और ऐसा करनेके लिए किसीको उन्हें समझानेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

हमारे देशकी वदकिस्मतीसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान नामसे उसके जो दो टुकड़े हुए उसमें मजहवको ही कारण वनाया गया है। उसके पीछे आर्थिक और दूसरे कारण भले रहे हों, मगर उनकी वजहसे यह वंटवारा नहीं हुआ होता।

आज हवामें जो जहर फैला हुआ है, वह भी उन्हीं सांप्रदायिक कारणोंसे ही पैदा हुआ है। धर्मके नामपर लूट-मार होती है, अधर्म होता है। ऐसा न हुआ होता तो अच्छा होता, ऐसा कहना अच्छा तो लगता है, मगर इससे वास्तविकताको वदला नहीं जा सकता।

यह सवाल कई वार पूछा गया है कि दोनोंके बीच लड़ाई होनेपर क्या पाकिस्तानके हिंदू, हिंदुस्तानके हिंदुओंके साथ और हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोंके साथ लड़ेंगे? मैं मानता हूं कि ऊपर बतलाई हुई हालतमें वे जरूर लड़ेंगे। मुसलमानोंकी वफादारीके वचनोंपर भरोसा करनेमें जितना जोखिम है, उसके वजाय भरोसा न करनेमें ज्यादा है। भरोसा करनेमें भूल हो और खतरेका सामना करना पड़े तो बहादुरीके लिए यह एक मामूली बात होगी।

उपयुक्त ढंगपर इस सवालको दूसरी तरहसे यों रखा जा सकता है कि क्या सत्य और न्यायके खातिर हिंदू हिंदूके खिलाफ और मुसलमान मुसलमानके खिलाफ लड़ेगा? इसका जवाब एक उलटा सवाल पूछकर दिया जा सकता है कि क्या इतिहासमें ऐसे उदाहरण नहीं मिलते?

सांप्रदायिक सवालोंके सिवा दूसरे सवालोंको लेकर भी दो राज्योंके बीच लड़ाई हो सकती है, मगर यहां इसपर विचार करना फिजूल है। हिंदुस्तानके मुसलमान और पाकिस्तानके गैर-मुस्लिम पाकिस्तानके खिलाफ लड़ें, यह बात मेरी कल्पनाके वाहर है।

इस सवालको हल करनेमें सबसे बड़ी उलझन यह है कि

सत्यकी दोनों ही राज्योंमें उपेक्षा की गई है, मानों सत्यकी कोई कीमत ही न हो। ऐसी विषम स्थितिमें भी हम उम्मीद करें कि सत्यपर अटल श्रद्धा रखनेवाले कुछ लोग हमारे देशमें जरूर हैं।

नई दिल्ली, १७–१०–'४७

: ३७ :

प्रौढ़-शिक्षणका नमूना

चर्खा-जयंतीके बारेमें सैकड़ों तार और पत्र मेरे पास आए थे। उनमेंसे नीचेके पत्रने, जो इंदौरकी प्रौढ़-शिक्षण-संस्थाकी तरफसे मिला है, मेरा ध्यान खींचा है—

"आजके शुभ अवसरपर हजारों बड़ी-बड़ी कीमती भेंटें, बधाईके तार और खत आपकी सेवामें पहुंचे होंगे। हिंदुस्तानके कोने-कोनेमें आपकी जन्मतिथि खुशीसे मनाई जा रही है। हर जगहका खुशी मनानेका ढंग जरूर कुछ-न-कुछ निराला होगा। हर एक यह कोशिश कर रहा होगा कि दूसरोंसे बढ़ जाय, जशन मनानेमें जीत उसीकी हो। इन सब बातोंको देखते हुए हमारी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि किसी तरहकी भेंट यहांके प्रौढ़ साक्षरता-प्रचारके कार्यकर्ताओंकी तरफ़से आपकी सेवामें पेश की जाय। लेकिन फिर भी इस शुभ अवसरको जिस तरहसे यहां मनाया गया है उसे लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। आशा है कि हमारे इस कार्यको ही भेंट समझकर आप स्वीकार करेंगे।

"ता० २–१०–'४७ से ता० ८–१०–'४७ तक जयंती मनानेकी योजना इस तरह रक्खी गई है कि इन सात दिनोंमें ८० गांवोंके लोग मिलकर

आधाशीशीके झाड़ोंको जड़से उखाड़कर नष्ट कर दें। इन झाड़ोंने सारे जंगलको घेरकर पशुओंके चारेका नाश कर दिया है। उनको उखाड़कर पशुओंके जीवनको बचानेके लिए, बिना किसी भेदभावके, इस अवसरसे फायदा उठाते हुए एक बुरी चीजको यहांसे दूर कर दें। इस योजनाके मुताबिक २ तारीखको छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर ६०-७० सालके बूढ़ोंने, एक मामूली गरीबसे लेकर सबसे ऊंचे धनवानने और एक छोटे नौकरसे लेकर बड़े-से-बड़े सर्कलके अफसरने इस कामको अपनाया और दोपहरसे पहले आधाशीशीके बड़े-बड़े खेतोंके पौधोंको उखाड़कर साफ कर दिया। इससे चारेका बचाव, आधाशीशीके आगे बढ़नेकी रोक और उसका खात्मा हफ्तेके खतम होनेके पहले हो जायगा। बजाय जलूस निकालनेके यहांकी जनताके दिलमें प्रौढ़-शिक्षाद्वारा यह बैठाया जा रहा है कि ऐसे अवसरपर कोई ऐसा काम करना चाहिए, जो किसी भी जीवनके लिए लाभदायक हो। किसी भी किस्मकी बुराईके बीजको जड़मूलसे खोदनेका प्रयत्न प्रौढ़-शिक्षाकी तरफसे किया जा रहा है।

"ऊपरकी जो भेंट सेवामें पेश की जा रही है, उसपर लोग चाहे हँस लें; लेकिन हम पूरे दिलसे यह विश्वास करते हैं कि आप हमें निराश न करेंगे और इसे जरूर स्वीकार करेंगे।"

मैं चरखा-जयंती मनानेका यह एक अच्छा नमूना समझता हूं। सूत निकालनेके अर्थमें चरखा भले ही न चला; लेकिन चरखेमें जो चीजें आ जाती हैं, उनमेंसे आधाशीशीके पेड़ोंको जड़से उखाड़ डालना अवश्य आता है। उसमें परमार्थ है। ऐसे कामोंमें सहयोग होता है और ऐसे काम सब छोटे-बड़े निरंतर करते रहें तो उससे सच्चा शिक्षण मिलता है और सुंदर परिणाम निकलता है।

नई दिल्ली, १८–१०–'४७

: ३८ :

रंग-भेदका निवारण

[रेडियो-विभागके गुजराती भाइयोंके साथ सवाल-जवाब]

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोंके साथ न्याय करनेमें असफल रहे तो दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंको क्या करना चाहिए ?

जवाब—सत्याग्रह। इसमें नाकामयाब होनेकी कोई बात ही नहीं है। यह मेरी कल्पनाके बाहरकी बात है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सत्याग्रह कभी असफल होता ही नहीं।

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ अगर दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोंके सवालोंको इन्साफसे हल करनेमें नाकामयाब साबित हो तो संस्थाके भविष्यपर इसका क्या असर हो सकता है ?

जवाब—अगर ऐसा होगा तो संयुक्त राष्ट्र संघकी साख चली जायगी।

सवाल—दुनियापर इसका क्या असर होगा ?

जवाब—यह कौन जानता है ? दुनियापर इसका क्या असर होगा, यह मैं तो नहीं जानता।

सवाल—दुनियामें शांति कायम करनेके लिए जातिभेद और रंगभेद मिटाना जरूरी है। जो लोग इस बातको मानते हुए भी रंगभेदकी बुराईको दूर करनेके लिए कोई कोशिश नहीं करते, उनके लिए आपका क्या कहना है ?

जवाब—हां, रंगभेद दूर करनेकी जरूरत तो है ही।

लेकिन जो लोग इसे जरूरी मानते हुए भी कोशिश नहीं करते, वे कमजोर और निकम्मे हैं। उन्हें कुछ करना नहीं है।

सवाल--**मानव-समाजमेंसे रंगभेद दूर करनेके लिए आपकी क्या सलाह है?**

जवाब--इसका बहुत कुछ हल हिंदुस्तानियोंके हाथमें है। हिंदुस्तान सीधे रास्ते आ जाय तो सब कुछ अच्छा हो जाय।

सवाल--**आज जो हिंदुस्तानी हिंदुस्तानके बाहर दुनियाके अलग-अलग देशोंमें रहते हैं, उनके लिए आप क्या संदेश देते हैं?**

जवाब--जहां-जहां हिंदुस्तानी रहें, वहां-वहां उन्हें अपना नूर दिखाना चाहिए। अपनी शक्तियां और गुण बताने चाहिए। एक भी हिंदुस्तानीको ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे हिंदुस्तानको नुकसान पहुंचे।

नई दिल्ली, २०-१०-'४७

: ३९ :

गुरुदेवके अमृतभरे वचन

गुरुदेवने अपने दस्तखत देते हुए जो भाव प्रकट किए थे, उनके संग्रहमेंसे नीचेके वचन एक बंगाली भाईने भेजे हैं। उन्हें मूल भाषामें, हिंदुस्तानी अर्थके साथ नीचे देता हूं:

से लड़ाई ईश्वरेर विरुद्धे लड़ाई
जे युद्धे भाईके मारे भाई।

वह लड़ाई ईश्वरके ही खिलाफ है जिसमें भाई, भाईको मारता है।

जे करे धर्मेर नामे विद्वेष संचित
ईश्वरके अर्घ्य हते से करे वंचित।

जो धर्मके नामपर दुश्मनी पालता है, वह भगवानको अर्घ्यसे वंचित करता है।

जे आंधारे भाईके देखिते नाहिं पाय
से आंधारे अंध नाहि देखे आपनाय।

जिस अंधेरेमें भाई भाईको नहीं देख सकता, उस अंधेरे-का अंधा अपनेको ही नहीं देख सकता।

ईश्वरेर हास्यमुख देखिवारे पाइ
जे आलोके भाइके देखिते पाय भाइ।
ईश्वर प्रणामे तवे हात जोड़ हय
जखन भाइयेर प्रेमे मिलाइ हृदय॥

जिस उजेलेमें भाई-भाईको देख सकता है, उसीमें ईश्वरका हँसता मुंह दिखाई पड़ सकता है। जब भाईके प्रेममें दिल पसीज जाता है, तभी ईश्वरको प्रणाम करनेके लिए जाते हुए हाथ जुड़ जाते हैं।

नई दिल्ली, २३–१०–'४७

: ४० :

अहिंसा कहां, खादी कहां ?

काठियावाड़से एक भाई लिखते हैं—

"दूसरे सूबोंकी तरह यहां काठियावाड़में भी खादी और अहिंसापरसे अपनी श्रद्धा हटा लेनेवालोंकी तादाद बढ़ती जा रही है। राजनीतिमें अहिंसा कैसे चल सकती है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी गांधी-भक्त भी हैं।"

इस खतमें इस तरहकी बहुत-सी बातें लिखी हैं, मगर मैंने तो सिर्फ मुद्देकी बात उसमेंसे निकाल ली है।

इस छोटेसे वाक्यमें तीन विचारदोष हैं। मैं पहले कई बार समझा चुका हूं कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशोंने अहिंसामें या खादीमें श्रद्धा रखी ही नहीं थी। मैंने यह मानकर अपने आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसाका पालन करते हैं और खादीको उसकी निशानीकी तरह अपनाते हैं। अहिंसाके नामपर लोगोंने कमजोरोंकी शांति रखी, मगर उनके दिलोंसे तो हिंसा कभी गई ही नहीं थी। अब तो इस बातको हम अच्छी तरहसे देख सकते हैं। काठियावाड़में राम नहीं है, यह बात तो जब मैं राजकोट-प्रकरणके सिलसिलेमें वहां गया था, तभी साफ मालूम हो गई थी। इसलिए यह कहनेमें कोई सार नहीं है कि आज काठियावाड़की श्रद्धा कम होती जा रही है।

राजनीतिमें अहिंसा नहीं चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़े तब वह राजनीति नहीं थी तो और क्या था ? आज तो राज-

नीति बहुत थोड़ी है। आज धर्मके नामपर लूट-पाट होती है। लोगोंने परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़नेमें जो शांति रखी, वह आज मानों खतम हो गई है।

तीसरा दोष यह है कि इसमें कांग्रेसी और गांधी-भक्तोंके बीच भेद किया गया है। इस भेदको मैं बिलकुल बेबुनियाद मानता हूं। अगर कोई गांधी-भक्त हो तो वह मैं ही हूं। मगर मुझे उम्मीद है कि ऐसा घमंड मुझमें नहीं है। भक्त तो भगवानके होते हैं। मैं तो अपनेको भगवान नहीं मानता। फिर मेरे भक्त कैसे ? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आपको गांधी-भक्त कहनेवाले लोग कांग्रेसी नहीं हैं। कांग्रेसके ऐसे अनगिनत सेवक हैं जो उसके चार आना सदस्य भी नहीं हैं। उनमेंसे मैं भी एक हूं; इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देशमें कई चीजें चल रही हैं, उनमें मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है, यह बात मुझे जोरोंसे कहनी चाहिए। मैं कह तो चुका हूं कि यह छिपी हुई बात नहीं है कि कांग्रेसने हुकूमत संभाली, तबसे वह अहिंसाको तिलांजलि दे चुकी है। मेरी रायमें, कांग्रेस-सरकारने खुराक और कपड़ेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है। मेरी चले तो मैं अनाजका एक दाना भी बाहरसे न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि हिंदुस्तानमें आज भी काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी जरूरत महसूस करनेको लाचार हुए हैं। अगर लोग मेरी बात मानते होते तो हिंदू, सिक्ख और मुसलमानोंके बीच कभी लड़ाई नहीं होती। साफ बात यह है कि मेरी बातकी आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी

आवाजकी कीमत अब अरण्य-रोदनके समान हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करें तो उसके लिए थोड़ी जगह जरूर है, मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमें जो उसका गौरव होना चाहिए, वह आज नहीं है। राजनीतिमें हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते हैं, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते हैं। आज जय खादीकी नहीं, बल्कि मिलके कपड़ेकी है। हम मान बैठे हैं कि अगर मिलें न हों तो करोड़ों इन्सानोंको नंगा रहना पड़े। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमें काफी कपास है, करघे हैं, चरखे हैं, कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोंमें घर कर गया है कि करोड़ों लोग अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए कातने-बुननेका काम अपने हाथमें नहीं लेंगे। जिसके दिलमें डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहां डरका कोई कारण नहीं होता। और डरसे जितने लोग मरते हैं, उतने मौतसे या रोगसे नहीं मरते।

नई दिल्ली, २४-१०-'४७

: ४१ :

नए विश्वविद्यालय

आजकल देशमें नए विश्व-विद्यालय कायम करनेकी आंधी-सी उठ खड़ी हुई है। गुजरातको गुजराती भाषाके लिए, महाराष्ट्रको मराठीके लिए, कर्नाटकको कन्नड़के लिए, उड़ीसाको उड़ियाके लिए और आसामको आसामी भाषाके लिए विश्व-

विद्यालय चाहिए। मुझे लगता है कि अगर सूबोंकी इन संपन्न भाषाओं और उन्हें बोलनेवाले लोगोंको पूरी-पूरी तरक्की करना हो तो ऐसे विश्व-विद्यालय होने ही चाहिए।

लेकिन ऐसा मालूम होता है कि इन विचारोंपर अमल करनेमें जरूरतसे ज्यादा उतावलापन दिखाया जा रहा है। इसके लिए सबसे पहले भाषावार सूबोंकी रचना की जानी चाहिए। उनका राज-तंत्र अलग होना चाहिए। बंबई सूबेमें गुजराती, मराठी और कन्नड़ तीन भाषाएं बोली जाती हैं। मद्रासके सूबेमें तामिल, तेलगू, मलयाली और कन्नड़ चार भाषाएं बोली जाती हैं। आंध्र देशका अपना अलग विश्व-विद्यालय है। उसे कायम हुए थोड़ा समय हो गया, लेकिन उसने काफी तरक्की की है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अनामली विश्व-विद्यालय तामिल भाषाके लिए माना जा सकता है; लेकिन मैं नहीं समझता कि उससे तामिल भाषाका पोषण होता है या उसका गौरव बढ़ा है।

नए विश्व-विद्यालयोंके लिए ठीक-ठीक वातावरण होना चाहिए। उन्हें जमानेके लिए ऐसे स्कूल और कालेज होने चाहिए, जो अपने-अपने प्रांतकी भाषाओंके जरिए तालीम दें। तभी विश्व-विद्यालयका पूरा वातावरण उत्पन्न हुआ माना जा सकता है। विश्व-विद्यालय चोटीकी शिक्षण-संस्था है; लेकिन अगर नींव मजबूत न हो तो उसपर इमारतकी मजबूत चोटी खड़ी करनेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

हालांकि हम राजनैतिक दृष्टिसे आजाद हैं, फिर भी पश्चिमके प्रभावसे अभी आजाद नहीं हुए हैं। जो यह मानते हैं

कि पश्चिममें ही सब कुछ है और हर तरहका ज्ञान वहींसे मिल सकता है, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है। न मेरा यही विश्वास है कि पश्चिमसे हमें कोई अच्छी चीज मिल ही नहीं सकती। वहां क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह समझने लायक प्रगति अभी हमने नहीं की है। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि विदेशी हुकूमतसे आजाद हो गए हैं इसलिए हम विदेशी भाषा या विदेशी विचारोंके असरसे भी आजाद हो गए हैं। क्या यह समझदारीकी बात नहीं होगी, क्या देशके प्रति हमारे फर्जका यह तकाजा नहीं है कि नए विश्व-विद्यालय कायम करनेके पहले हम थोड़ी देर ठहरें और अपनी नई मिली हुई आजादीके जीवन देनेवाले वातावरणमें कुछ सोचें? विश्व-विद्यालय सिर्फ पैसोंसे या बड़ी-बड़ी इमारतोंसे नहीं बनते। विश्व-विद्यालयोंके पीछे जनताकी जाग्रत रायका होना सबसे जरूरी है। उनके लिए पढ़ानेवाले काबिल शिक्षकोंकी जरूरत है। उनके कायम करनेवाले लोगोंमें काफी दूरंदेशी होनी चाहिए।

मेरे विचारसे विश्व-विद्यालय कायम करनेके लिए पैसेका इंतजाम करनेका काम लोकशाही हुकूमतका नहीं है। अगर लोग उन्हें कायम करना चाहेंगे तो वे उनके लिए पैसे भी देंगे। लोगोंके पैसेसे कायम किए जानेवाले विश्व-विद्यालय देशकी शोभा बढ़ाएंगे। जिस देशका राजकाज विदेशियोंके हाथमें होता है, वहां सब कुछ ऊपरसे टपकता है और इसलिए लोग दिनोंदिन पराधीन या गुलाम बनते जाते हैं। जहां जनताकी हुकूमत होती है, वहां हर चीज नीचेसे ऊपर उठती है और

इसलिए वह टिकती है, शोभा पाती है और लोगोंकी ताक़त बढ़ाती है। जिस तरह अच्छी जमीनमें बोया हुआ बीज दस गुनी उपज देता है उसी तरह विद्याकी उन्नतिके लिए खर्च किया हुआ पैसा कई गुना लाभ पहुंचाता है। विदेशी हुकूमतके मातहत क़ायम किए गए विश्व-विद्यालयोंने इससे उलटा काम किया है। उनका दूसरा कोई नतीजा हो भी नहीं सकता था। इसलिए हिंदुस्तान जबतक नई मिली हुई आजादीको अच्छी तरह पचा नहीं लेता तबतक नए विश्वविद्यालय कायम करनेमें मुझे बड़ा डर मालूम होता है।

इसके अलावा, हिंदू-मुसलमानोंके झगड़ेने ऐसा भयंकर रूप ले लिया है कि आज पहलेसे यह कहना मुश्किल हो गया है कि हम कहां जाकर रुकेंगे। मान लीजिए कि अनहोनी बात हो जाय और हिंदुस्तानमें सिर्फ हिंदू और सिक्ख ही रहें और पाकिस्तानमें सिर्फ मुसलमान, तो हमारी शिक्षा जहरीला रूप ले लेगी। अगर हिंदू, मुसलमान और दूसरे धर्मके लोग हिंदुस्तानमें भाई-भाई बनकर रहेंगे तो स्वभावतः हमारी शिक्षाका सौम्य और सुंदर रूप होगा। या तो हमारे देशमें अलग-अलग धर्मोंके लोगोंके दोस्ती और भाईचारेसे रहते आनेके कारण जो मिली-जुली सुंदर सभ्यता पैदा हुई है, उसे हम मजबूत बनाएंगे और ज्यादा अच्छा रूप देंगे, या फिर हम ऐसे समयकी खोज करेंगे जब हिंदुस्तानमें सिर्फ हिंदू-धर्मके लोग ही रहते थे। इतिहासमें ऐसा कोई समय शायद न मिल सके। लेकिन ऐसा कोई समय मिला और हम

उसके पीछे चले तो हम कई सदी पीछे हट जायंगे और दुनिया हमसे नफरत करेगी और हमें कोसेगी। मिसालके लिए, अगर हम इतिहासके मुगलकालको भूलनेकी बेकार कोशिश करेंगे तो हमें दिल्लीकी, दुनियामें सबसे अच्छी जामा मसजिदको भूल जाना होगा, या अलीगढ़की मुस्लिम यूनिवर्सिटीको भूलना होगा, या दुनियाके सात अचरजोंमेंसे एक आगराके ताजको, या मुगल-कालमें बने हुए दिल्ली और आगराके बड़े-बड़े किलोंको भूलना पड़ेगा। तब हमें उसी दृष्टिसे अपना इतिहास फिरसे लिखना होगा। आजका वातावरण सचमुच ऐसा नहीं है जिसमें हम इस बारेमें किसी सही नतीजेपर पहुंच सकें। अपनी दो महीनेकी आजादीको अभी हम गढ़नेमें लगे हैं। हम नहीं जानते कि आखिरमें वह क्या रूप लेगी। जबतक हम ठीक-ठीक यह नहीं जान लेते तबतक अगर हम मौजूदा विश्व-विद्यालयोंमें ही भरसक फेर-फार करें और आजकी शिक्षण-संस्थाओंमें आजादीके प्राण फूंकें तो इतना काफी होगा। इस तरह हमें जो अनुभव होगा, वह नए विश्व-विद्यालय कायम करनेमें हमारी मदद करेगा।

अब रही बात बुनियादी तालीमकी। इस तालीमको शुरू हुए अभी आठ बरस हुए हैं। इसलिए उसके अमलमें जो अनुभव हुआ है, वह हमें मैट्रिकके दर्जेसे आगे नहीं ले जाता। फिर भी जो लोग इसके प्रयोगमें लगे हैं, उनके मनमें बुनियादी तालीमका विकास होता ही रहता है। जिस संस्थाके पीछे आठ सालका ठोस अनुभव है, उसकी सिफारिशोंको

कोई भी शिक्षाशास्त्री ठुकरा नहीं सकता। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यह बुनियादी तालीम देशके वातावरणमेंसे पैदा हुई है और वह देशकी जरूरतोंको पूरा कर सकती है। यह वातावरण हिंदुस्तानके सात लाख गांवोंमें और उनमें रहनेवाले करोड़ों लोगोंमें छाया हुआ है। उनको भुलाकर आप हिंदुस्तानको भी भूल जायंगे। सच्चा हिंदुस्तान शहरोंमें नहीं, बल्कि इन सात लाख गांवोंमें बसा है। शहर विदेशी हुकूमतकी जरूरतें पूरी करनेके लिए खड़े हुए थे। आज भी वे पहलेकी तरह निभ रहे हैं, क्योंकि विदेशी हुकूमत हिंदुस्तानसे चली गई, लेकिन उसका असर अभी बना हुआ है--इतनी जल्दी वह जा भी नहीं सकता।

यह लेख मैं नई दिल्लीमें लिख रहा हूं। यहां बैठे-बैठे मैं गांवोंका क्या खयाल कर सकता हूं? जो बात मुझपर लागू होती है, वही हमारे प्रधान-मंडलपर भी लागू होती है। फर्क यही है कि उसपर यह विशेष तौरसे लागू होती है।

यहां हम बुनियादी तालीमके खास-खास उसूलोंपर विचार करें—

(१) पूरी शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए। यानी आखीरमें पूंजीको छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद निकालना चाहिए।

(२) इसमें आखिरी दरजेतक हाथका पूरा-पूरा उपयोग किया जायगा। यानी विद्यार्थी अपने हाथोंसे कोई-न-कोई उद्योग-धंधा आखिरी दरजेतक करेंगे।

(३) सारी तालीम विद्यार्थियोंकी सूबेकी भाषा द्वारा दी जानी चाहिए।

(४) इसमें सांप्रदायिक धार्मिक शिक्षाके लिए कोई जगह नहीं होगी, लेकिन बुनियादी नैतिक तालीमके लिए काफी गुंजायश होगी।

(५) यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, औरत ले या मर्द, विद्यार्थियोंके घरोंमें भी पहुंचेगी।

(६) चूंकि इस तालीमको पानेवाले लाखों-करोड़ों विद्यार्थी अपने आपको सारे हिंदुस्तानके नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हें एक अंतर्प्रांतीय भाषा सीखनी होगी। सारे देशकी यह एक भाषा नागरी या उर्दूमें लिखी जानेवाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए विद्यार्थियोंको दोनों लिपियां अच्छी तरह सीखनी होंगी।

इस बुनियादी विचारके बिना या इसको ठुकराकर जो नए विश्वविद्यालय कायम किए जायंगे वे मेरे विचारसे देशको कोई फायदा नहीं पहुंचाएंगे, उलटे नुकसान ही करेंगे। इसलिए सब शिक्षा-शास्त्री इस नतीजेपर पहुंचेंगे कि नए विश्वविद्यालय खोलनेसे पहले थोड़ी देर ठहरना और सोच-विचार करना जरूरी है।

नई दिल्ली, २५-१०-'४७

: ४२ :

दोनों लिपियां क्यों ?

रैहानाबहन तैयबजी लिखती हैं :

"१५ अगस्तके बाद दो लिपियोंके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गए और अब पक्के हो गए हैं। मेरे खयालसे अब वक्त आ गया है कि इस दो लिपियोंके सवालपर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ-साफ चर्चा हो। इसलिए अगर आप ठीक समझें तो इस खतको 'हरिजन'में छापकर उसपर चर्चा करें।

"जबतक हिंदुस्तान अखंड था और उसे अखंड रखनेकी उम्मीद थी तबतक नागरी लिपिके साथ उर्दू लिपिको चलाना मैं उचित—बल्कि जरूरी—मानती थी। आज हिंदुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गए हैं (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिंदुस्तानी हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा : नागरी हिंदुस्तानकी खास और मान्य लिपि—फिर नागरीके साथ उर्दूके गंठबंधनकी क्या जरूरत है ? इस सवालपर मैं बराबर विचार करती रही हूं और अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिंदुस्तानीपर उर्दू लिपि लादनेमें इतना ही नहीं कि कोई फायदा नहीं, बल्कि सख्त नुकसान है। मैं मानती हूं कि :

"१. हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य और मैत्री, भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती—सिर्फ सामाजिक मेल-जोलसे हो सकती है। यह चीज मैं जीवन-भर देखती आई हूं। मुसलमान खुद यही कहते आए हैं और अब भी कहते हैं। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने, कामकाज करनेसे ही ऐक्य बढ़ सकता है। उर्दू लिपि सामाजिक मेल-जोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

"२. मुसलमानोंको अगर आप वफादार हिंदुस्तानी बनाना चाहते

हैं तो उनमें और बाकीके हिंदुस्तानियोंमें अब कोई फर्क नहीं करना चाहिए। अगर वे हिंदुस्तानमें रहना चाहते हैं तो और हिंदुस्तानियोंकी तरह रहें। हिंदुस्तानी सीखें, नागरी सीखें। अगर उर्दूका आग्रह हो तो बेशक उन्हें उर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जायं। मगर उन्हें खुश करनेके खातिर हिंदुस्तानकी सारी जनतापर उर्दू लिपि क्यों लादी जाय? इसमें मुझे सख्त अन्याय नजर आता है और मैं इसके बिलकुल खिलाफ हूं। गैर-मुसलमानोंपर यह अन्याय, कि उन्हें फिजूल एक इतनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिंदुस्तानीके लिए निकम्मी--(उर्दूलिपिमें साहित्यिक हिंदुस्तानी लिखना महा कठिन है; क्योंकि संस्कृत शब्दोंकी बड़ी तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।)--लिपि सीखनेमें अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है और मुसलमानोंपर यह अन्याय कि उन्हें अपना दुराग्रह छोड़नेका आप कोई मौका ही नहीं देते! उनकी बेजा मांग पूरी करके आप उनमें और अन्य अल्पसंख्यकोंमें एक कृत्रिम फर्क पैदा कर देते हैं। इससे गैर-मुसलमानोंको चिढ़नेका हक मिलता है और मुसलमानोंको अपनी अलग-अलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौका मिलता है। (इस चीजका सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने उर्दू लिपि भी चलाई तो मुसलमान सदा हिंदमें परदेशी बनकर रहेंगे और कामचलाऊ नागरीसे संतोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार उर्दूमें चलाएंगे। यह मेरा अनुभवजन्य, इसलिए, दृढ़ विश्वास है। बापूजी! गुस्ताखी माफ--आप लोग मुसलमानोंसे इतने अलग रहे हैं कि आपको उनके मानसकी बिलकुल खबर नहीं। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरीके साथ उर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना लिया तो आप हिंदुस्तानके भीतर एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे।

"३. मैं मानती हूं कि जो शक्ति आप लोगोंको उर्दूलिपिके प्रचारमें, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीजोंमें, कातिब, ब्लॉक्स और छपाईकी लोहमतोंमें खर्च करनी पड़ती है सो अब खरे महत्वके कामोंमें लगानी

चाहिए। हमें हिंदुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने हैं, साहित्य खड़ा करना है, उर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममें रुकावटें पैदा होती हैं और वक्त फिजूल बिगड़ता है। इसमें शक नहीं कि उर्दू-हिंदी दोनों जाने बिना हिंदुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाजा प्रचारकोंको, लेखकोंको, हमारे प्रचारक-मदरसोंमें नागरी-उर्दूका ज्ञान होना जरूरी है। लेकिन आम जनताको उर्दू लिपिसे क्या गरज? उसकी जबान हिंदुस्तानी हो तो बिलकुल काफी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोंकी सारी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी हैं और एक भी गले नहीं उतरती। इसलिए आज यह चर्चा कर रही हूं। हम हिंदुस्तानियोंका यही सूत्र रहे—हमारी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस!

"४. अब एक मुस्लिम हिंदुस्तानीकी हैसियतसे मेरी विनती है। खुदाके लिए आप मुसलमान हिंदुस्तानियोंको अपने ही मुल्कमें परदेशियों-की तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिए। वे तो यही चाहते हैं। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहें और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहें! बापू, मैं बहुत घबराई हुई हूं। मैं मुसलमान-समाजसे वाकिफ हूं। उनकी महत्वाकांक्षाएं मैं जानती हूं, भले आप जानने या माननेसे इन्कार करें। खुदाके लिए मेरी बातपर ध्यान दीजिए।

"आम तौरसे हिंदवासी मुसलमानोंकी 'हिंदुस्तानी' यानी 'उर्दू'। वे कोई और 'हिंदुस्तानी' न जानते हैं, न मानते हैं। आकाशवाणी (रेडियो)की भाषापर मुसलमानोंकी कड़ई टीका यह है कि भई, इस जबानको तो हम नहीं समझ सकते, कितने संस्कृत अल्फ़ाज़ हैं? 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय' जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफादार मुसलमान हिंदुस्तानियोंके लिए हराम हैं। अगर सारी जनता उर्दू सीख गई तो क्या आप मानते हैं कि मुसलमान उर्दूके सिवा कुछ भी लिखेंगे-पढ़ेंगे?

मैं नहीं मानती और मेरे अविश्वासके पीछे हिंदवासी मुसलमानोंका सारा इतिहास पड़ा हुआ है।

"बापू! हाथ जोड़कर अर्ज है—सज्जनताके साथ क्या सत्यदर्शन (Realism) नहीं रह सकता?"

यह खत सोचनेके काबिल है। रैहानाबहनके दिलमें हिंदू-मुस्लिमका भेद नहीं है। दोनों एक हैं ऐसा वह मानती है और वैसे ही बरतती है। मैं भी दोनोंमें भेद नहीं करता। हम दोनों मानते हैं कि हिंदू और मुसलमानोंमें आचार-भेद है, पर वह भेद दोनोंको अलग नहीं रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोंकी जड़ एक है।

तब भी रैहानाबहनकी बातमें मैं भूल देखता हूं। हम दो लोग (नेशन) नहीं हैं। दो लोग माननेमें हम हिंदुस्तानको बड़ा नुकसान पहुंचाएंगे। क़ायदेआज़म भले दो लोग मानें और ऐसे माननेवाले भले हिंदू भी हों, लेकिन सारी दुनिया गलतीमें फँसे तो क्या हम भी फँसें? ऐसा कभी नहीं हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी है तो उसे दोनों लिपियोंमें लिखनेकी छूट होनी चाहिए। अगर हम हिंदूको या मुसलमानको एक ही लिपिमें लिखनेके लिए मजबूर करें तो हम उसके साथ गैरइन्साफी करेंगे और जब यह गैरइन्साफी अल्पमतपर उतरती है तब बहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नहीं कहता कि हिंदुस्तानके ४० करोड़को दोनों लिपियां सीखना है। ऐसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमें फिरता है, जिसको अपने सूबे ही की नहीं; बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी

है, उसे दो लिपियां सीखनी ही चाहिए, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान।

अगर हिंदीको राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी; अगर उर्दूको बनना है तो लिपि उर्दू ही होगी। अगर हिंदी उर्दूके संगमके जरिए हिंदुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है तो दोनों लिपियां जरूरी हैं। याद रखना चाहिए कि आज सचमुच उर्दू लिपि या उर्दू भाषा सिर्फ मुसलमानोंकी नहीं है। ऐसे असंख्य हिंदू हैं, जिनकी मादरी जबान उर्दू है और वे उसे उर्दू लिपिमें ही लिखते हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि दो लिपियोंकी बात आजकी नहीं है। मैं जब हिंदुस्तानमें आया तबसे यह बात चली है। यही विचार मैंने इंदौरके हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। उस वक्त अगर कोई विरोध हुआ था तो नहींके बराबर था। उसका मुझे स्मरण भी नहीं है। हां, नाम मैंने हिंदी ही कायम रखा था। व्याख्या वही की थी, जो आज करता हूं। मेरे खयालसे आज जब विचारोंकी उथल-पुथल हो रही है तब हमारी पतवार सिर्फ एक, और मजबूत होनी चाहिए।

जबतक उर्दू लिपिका संबंध मुसलमानोंसे माना जाता है तबतक हमारा फर्ज है कि हम हिंदुस्तानीके नामपर और दोनों लिपियोंपर कायम रहें। यह बात सबको साफ समझ-में आने-जैसी है। किसी भी कारणसे हो, हमने कई जगह यूनियनमें मुसलमानोंपर ज्यादतियां की हैं। पाकिस्तानमें हिंदुओं और सिखोंपर ज्यादतियां शुरू हुईं, इसलिए यूनियनमें

हिंदुओं और सिखोंने मुसलमानोंपर कीं, ऐसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोंके समर्थनमें हो नहीं सकता। ऐसे मौकेपर कहना कि हिंदुस्तानमें राष्ट्रलिपि एक नागरी ही होगी, इसे मैं मुस्लिम भाइयोंपर नागरीको 'लादना' कहूंगा। हां, अगर मुसलमान उर्दू लिपिमें ही लिखें और उर्दू व हिंदुस्तानीमें कोई फर्क ही न समझें तो मैं उसे मुस्लिम भाइयोंका हठ कहूंगा। शायद ऐसा भी माना जायगा कि उनका दिल हिंदुस्तानमें नहीं है।

रैहानाबहनका यह कहना कि उर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमें मुसलमानोंको राजी रखनेकी या उनकी खुशामद करनेकी बात होगी, नासमझीकी बात है। राजी रखना कभी फर्ज होता है और किसी वक्त गुनाह भी होता है। भाईका अपने भाईको राजी रखनेके लिए उत्तरमें जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज हो सकता है, लेकिन शराब पीना गुनाह होगा। इस तरह तो वह अपना और अपने भाईका बुरा करेगा। मुसलमान भाईको राजी रखनेके लिए मैं कलमा नहीं पढ़ सकता, न वह मुझे राजी रखनेके लिए गायत्री पढ़ सकता है, कलमा और गायत्री दोनों एक ही चीजें हैं, ऐसा मानकर ही दोनों एक-दूसरेको समझ सकते हैं। लेकिन यह दूसरी बात है, और ऐसा होना भी चाहिए। इसीलिए तो एकादश व्रतमें सर्वधर्म-समानताको जगह दी गई है।

तात्पर्य यह कि सबको राजी रखनेमें दोष ही है, ऐसा नहीं कह सकते, बल्कि बाज दफा वही फर्ज होता है।

बहन फिर लिखती हैं कि नागरी लिपि प्रमाणमें पूर्ण है,

उर्दू प्रमाणमें अपूर्ण । उर्दू पढ़नेमें मुश्किल है और संस्कृतके शब्द उर्दूमें लिखे ही नहीं जाते। इस कथनमें थोड़ा वजूद (वज़न) है जरूर। इसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुए भी सुधार मांगती है, वैसे ही उर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार मांगती है । संस्कृत शब्द उर्दू लिपिमें लिखे ही नहीं जाते, ऐसा कहना ठीक नहीं है । मेरे पास सारी गीता उर्दू लिपिमें लिखी पड़ी है । लिपियोंमें सुधार तव हो सकता है, जव वे गिरोहवंदी और जनूनका कारण नहीं रहतीं । सिंधी लिपि उर्दूका सुधार ही है न ?

अंतमें रैहानावहनसे मैं कहना चाहूंगा कि उनका खत हिंदुस्तानीका एक नमूना है । उसमें अरवी शब्द हैं तो संस्कृत भी हैं। हिंदुस्तानीकी खूवी ही यह है कि उसे न संस्कृतसे वैर है, न अरवी-फारसीसे । हिंदुस्तानी तो ताकतवर तव वनेगी जव वह अपनी मिठासको कायम रखकर दुनियाकी सव भाषाओंका सहारा लेगी; लेकिन उसका व्याकरण तो हमेशा हिंदी रहेगा । 'हिंदू' का वहुवचन 'हिंदुओं' है, 'हनूद' नहीं । रैहानावहन उर्दू अच्छी जानती हैं और हिंदी भी । दोनों लिपियोंमें लिख भी सकती हैं । जव मैं यरवदा जेलमें था तव वह और जोहरावहन अंसारी मुझे उर्दूके पाठ खतोंकी मारफत सिखाती थीं ।मेरी सलाह है कि वह अपना वक्त हिंदुस्तानीको वढ़ानेमें और दोनों लिपियां आसानीसे सिखानेमें दें । यह काम वह तभी कर सकती हैं जव उनका अपना अज्ञान दूर हो । अगर वह जो मानने लगी हैं सो ठीक है तो मुझे कुछ कहनेको नहीं रह जाता । तव तो

मुझे एक नया पाठ सीखना होगा और उर्दू लिपिको जो जगह में देता हूं, उसे भूलना होगा।

नई दिल्ली, १-११-'४७

: ४३ :

हम ब्रिटिश हुकूमतकी नकल तो नहीं कर रहे हैं?

"१५ अगस्त आई और चली गई। सारे हिंदुस्तानके लोगोंने बड़ी धूमधाम और अनोखे उत्साहसे आजादी-दिन मनाया। उनका यह सोचना ठीक ही था कि साम्राज्यवादी हुकूमतके नीचे उन्हें जितनी भी भयंकर मुसीबतें और यातनाएं सहनी पड़ीं, वे सब अब पुराने जमानेकी निशानियां बन जायंगी। जीवनमें पहली बार गांवके गरीब-से-गरीब किसानकी निराशाभरी आंखें खुशीसे चमक उठीं। इस मौकेपर शहरके मजदूरका उदास दिल भी खुशीसे उछलने लगा। इस विशाल देशके हर दबे और कुचले हुए मर्द और औरतने आजादी-दिन दिली जोश और उमंगके साथ मनाया, क्योंकि बरसोंके दुःख-दर्द और कुरबानियोंके बाद आखिर हिंदुस्तान-के पराधीन मानवको आशाकी झलक दिखाई दी, उसे बेहतर दिनों और बोझोंके हलके होनेकी उम्मीद बंधी।

"लेकिन आजादी-दिनकी खुशियोंके बाद ही नई दिल्लीसे एक सरकारी सूचना निकली, जिसमें सूबोंके गवर्नरोंकी तय की हुई तनखाहों और भत्तोंकी घोषणा की गई। भोली-भाली जनताने यह आशा लगा रखी थी कि साम्राज्यवादी हुकूमतके साथ ही ऊंचे अफसरोंकी बड़ी-बड़ी तनखाहोंके भारसे दबा हुआ शासन-तंत्र भी खतम हो जायगा, जो गुलाम देशको

साम्राज्यवादके फंदेमें फँसाए रखनेके लिए ही पैदा किया गया था। आजसे पहले देशके हर राजनैतिक नेताने, हर मशहूर अर्थ-शास्त्रीने, वाइसराय, केंद्रके मंत्रियों और सूबोंके गवर्नरों वगैरह सरकारी हाकिमोंको दी जाने-वाली वड़ी-वड़ी तनख़ाहों और उनके भत्तोंकी साफ शब्दोंमें कड़ी निंदा की थी। इस बारेमें कांग्रेसने कई प्रस्ताव पास किए थे। कराची-कांग्रेसके मशहूर प्रस्तावमें सरकारके ऊंचे-से-ऊंचे हाकिमकी तनख़ाह ५०० रुपये माहवार नियत की गई थी; लेकिन आज शायद वह सब भुला दिया गया है और गवर्नरोंकी ऊंची तनख़ाह ५५०० रुपये माहवार तय की गई है।

"सबसे पहले हम यह देखें कि दूसरे देशोंके ऐसे ऊंचे हाकिमोंको क्या तनख़ाह दी जाती है। दुनियाके सबसे धनी देशकी सबसे धनी स्टेट—न्यूयार्क—अपने गवर्नरको १० हजार डालर सालाना देती है, जो हमारे हिसाबसे तीन हजार रुपये माहवारसे भी कम होता है। अमेरिकाके आइडाहो नामक स्टेटके गवर्नरकी तनख़ाह १५०० रुपये माहवारसे भी कम होती है। अमेरिकाकी एक दूसरी स्टेट मेरीलैंड अपने गवर्नरको १ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ज्यादा देती है। इलिनोइसका गवर्नर, जिसकी आवादी उड़ीसा या आसामके बरावर है, ३ हजार रुपयेसे कुछ ही ज्यादा पाता है। दक्षिण अफ्रीकाके यूनियनमें सूबोंके शासकोंको, जो हमारे हिंदुस्तानी गवर्नरोंकी हैसियतके होते हैं, हर माह २,२००से २,७०० रुपयोंके बीच वेतन दिया जाता है। आस्ट्रेलियामें क्वींसलैंडके गवर्नरको ३ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ऊपर तनख़ाह मिलती है। इसे सब जानते हैं कि स्टेलिनको ३५० रुपये माहवार वेतन दिया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन केबिनेट मिनिस्टरोंकी तनख़ाहोंका मुकाबला हमारे गवर्नरोंकी तनख़ाहोंसे नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे लोग अपने पूरे देशपर शासन करते हैं। और फिर भी ब्रिटिश मंत्रिमंडलके मंत्रीकी तन-ख़ाह हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनख़ाहसे ज्यादा नहीं होती। यह ध्यानमें रखने

लायक बात है कि ऊपरके देशोंके उन हाकिमोंको अपनी तनख़ाहोंमेंसे इनकमटैक्स और दूसरे टैक्स भी देने होते हैं। इसलिए बिना किसी विरोधके यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनख़ाह दुनियामें सबसे ऊंची है।

"इन बातोंपर हम दूसरे पहलूसे विचार करें। हिंदुस्तानका गवर्नर अपने सूबेका अव्वल नंबरका सेवक है। इसलिए हम इस सेवककी आमदनीका उसके मालिक (जनता)की आमदनीसे मुकाबला करें। इस लड़ाईके पहले हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी ६५ रुपये कूती गई थी। अगर हम एक मामूली किसान या मजदूरकी औसत सालाना आमदनीका हिसाब लगावें तो वह इससे बहुत कम होगी। प्रो० कुमारप्पाके हिसाबसे यह सिर्फ १२ रुपये थी, और प्रिंसिपल अग्रवालने उसका आंकड़ा १८ रुपये सालाना तय किया है। इन सारे औसतोंका हिसाब लगानेपर हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि एक हिंदुस्तानी गवर्नरकी आमदनी अपने मालिकोंकी आमदनीसे हजार गुना ज्यादा होती है। और अगर हम नीचे-से-नीचे वर्गके लोगोंकी, जिनकी हिंदुस्तानमें बहुत बड़ी तादाद है, सालाना आमदनीको लें तो सेवक और मालिकोंकी आमदनीके बीचका यह भेद ४ हजार गुनातक पहुंच जाता है। अमेरिकामें भी, जिसे सबसे बड़ा पूंजीवादी देश कहा जाता है और जहां सबसे बड़ी आर्थिक विषमता पाई जाती है, एक गवर्नरकी आमदनी एक अमेरिकन नागरिककी औसत आमदनीसे सिर्फ २० गुना ज्यादा होती है।

"दूसरी तरहका मुकाबला इस समस्यापर और ज्यादा प्रकाश डाल सकेगा। सूबोंके शासन-प्रबंधमें चपरासियोंका नंबर सरकारी आफिसोंमें सबसे नीचा होता है। मध्यप्रांतमें एक चपरासीकी माहवार तनख़ाह ११ रुपये है। दूसरे सूबोंमें वह कुछ कम या ज्यादा हो सकती है। जब एक गवर्नर और चपरासीकी तनख़ाहमें इतना फर्क हो तब सूबेका पूरा शासन-तंत्र आम लोगोंके भलेके लिए सामाजिक और उन्नत व्यवस्था कायम

करनेमें उत्साहसे एक आदमीकी तरह कैसे काम कर सकता है ? थोड़ेमें, हम चाहे अपनी नीची-से-नीची राष्ट्रीय आमदनीको लें, नीचे-से-नीचे चपरासीकी तनख़ाहको लें, या चोटीपर खड़े गवर्नरकी तनख़ाहको लें, हमें दुनियामें हिंदुस्तानकी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

"जब सूबोंके गवर्नरोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें दी जाती हैं तब हम दूसरे ऊंची-ऊंची रकमें पानेवाले सरकारी हाकिमोंकी तनख़ाहें घटानेके बारेमें कैसे सोच सकते हैं ? अगर ऊंची तनख़ाहें घटाई नहीं जा सकतीं और नीची तनख़ाहें बढ़ाई नहीं जा सकतीं तो सूबोंके माल-मंत्री सारी प्रजाको शिक्षा देने, या डॉक्टरी सुभीते देने वगैरहकी योजनाओंको अमलमें लानेके लिए पैसा कहांसे लावें ? हम इस भ्रममें न रहें कि आजादीके आते ही कलकी भयंकर गरीबीवाला राष्ट्र थोड़े ही समयमें धनी और उन्नत राष्ट्र बन जायगा, ताकि वह अपने गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंको बड़ी-बड़ी तनख़ाहें दे सके। सोवियट यूनियनको अपनी राष्ट्रीय आमदनी बढ़ानेके लिए तीन पंचवर्षीय योजनाएं बनानेकी जरूरत पड़ी। बंबई-योजना बनानेवाले लोगोंने भी १०० अरब रुपयेकी पूंजी लगानेपर १५ सालके आखिरमें हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी १३० रुपये ही कूती है। इसलिए हिंदुस्तानके एक ही दिनमें धनी बन जानेके सुनहले सपने जितनी जल्दी छोड़ दिए जायं, उतना ही हम सबके लिए अच्छा होगा। सत्य बड़ा कठोर है और हमें ईमानदारीसे उसका भलीभांति सामना करना चाहिए। हम अपने हाकिमोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें नहीं दे सकते।"

—टी० के० बेंग

हालांकि मैं प्रो० बेंगद्वारा दिए हुए आंकड़ोंके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता, फिर भी उन्होंने हिंदु-स्तानके गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंकी बड़ी-बड़ी तन-

खाहोंके बारेमें और हमारी सरकारोंद्वारा अपने नौकरोंको दी जानेवाली ऊंची-से-ऊंची और नीची-से-नीची तनखाहोंकी भयंकर विषमता या फर्कके बारेमें जो कुछ लिखा है, उसका समर्थन करनेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है ।

नई दिल्ली, २–११–'४७

: ४४ :

दो अमेरिकन दोस्तोंका दिलासा

मेरे पास अमेरिकन दोस्तोंके, जिन्हें मैं जानता भी नहीं, बहुतसे खत आते हैं। उनमेंसे दो ऐसे दोस्तोंके खतोंमेंसे नीचेके अंश यहां देने लायक मालूम होते हैं :

"अपने देशकी आजकी दुर्दशाके कारण आपको जो भारी दुःख हो रहा है उसका यह तकाजा है कि मैं हिंदुस्तानकी मौजूदा दुःखभरी घटनाओंके बारेमें आपके मनमें उठ रहे विचारों और चिंताओंमें दखल दूं और आपको यह याद दिलाऊं कि आपके सुंदर और प्रेरणाभरे शब्दोंने दुनियाके हर कोनेमें जड़ जमा ली है ।

"यह तो स्वाभाविक बात है कि इन दुःखभरी घटनाओंके कारण आप किसी क़दर निराशा-सी महसूस करें। मेरे खत लिखनेका यही मतलब है कि आपकी यह निराशा बहुत ज्यादा नहीं बढ़नी चाहिए और आपको पस्तहिम्मत तो कभी होना ही नहीं चाहिए ।

"बीज कभी एकदमसे सुंदर और खुशबूदार फूलका रूप नहीं लेता । इसके लिए उसे पहले सड़ना होता है, उगना होता है और विकासके खास दरजोंसे गुजरना पड़ता है । और अगर विकास या तरक्कीके किसी दरजे-

पर उसमें कोई गड़बड़ी पैदा होती है तो उस समय उसके पास मालीका हाजिर रहना सबसे जरूरी हो जाता है। जब माली रोगी पौधेकी सार-संभालके निःस्वार्थ काममें पूरी तरह खो जाता है तब शायद वह अपने बगीचेके दूसरे पौधोंके विकासको पूरी तरह नहीं देख सकता, जो बढ़कर मानों अपने दुःखी भाईकी सेवा और हमदर्दीमें उसका साथ दे रहे हों।

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप दुनियाके सारे देशोंके सारे वर्गों, जातियों और धर्मोंके बेशुमार लोगोंका खयाल करें। वे सब भी आज आपके साथ शांतिके लिए भगवानसे प्रार्थना कर रहे हैं। हम सब, जिनकी आशाओंको आपने इतने अच्छे ढंगसे जाहिर किया है और जिन्हें शांतिके विज्ञानकी मददसे पाई गई आपकी बड़ी-बड़ी विजयोंसे नया बल और नया साहस मिला है, एक साथ मिलकर यह प्रार्थना करते हैं कि भगवान आपको आशीर्वाद दे और अपने गौरवपूर्ण कामको जारी रखनेके लिए जिंदा रखे, जिसका बहुत-सा हिस्सा अभी आपको पूरा करना है।"

हो सकता है कि इन दोस्तोंका कहना सच साबित हो और अभीतक हिंदुस्तान जिस पागलपनभरे रक्तपातसे गुजर रहा है—हालांकि पहलेका गुस्सा और पागलपन अब कम हुआ दिखाई देता है—वह इतिहासमें असाधारण न साबित हो। लेकिन आज हिंदुस्तान जिस हालतसे गुजर रहा है उसे हमें तो असाधारण ही मानना चाहिए। अगर हम यह मानें कि हिंदुस्तानने जैसी आजादी पाई है, उसका श्रेय अहिंसाको है तो जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, हिंदुस्तानकी अहिंसक लड़ाई केवल नामकी ही थी, असलमें वह कमजोरोंका निष्क्रिय प्रतिरोध था। इस बातकी सचाई हम हिंदुस्तानकी आजकी घटनाओंमें प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

नई दिल्ली, ६–११–'४७

: ४५ :

'सिर्फ मुसलमानोंके लिए'

एक खत लिखनेवाले भाईने इस बातकी तरफ मेरा ध्यान खींचा है कि पहले मैंने रेलवे स्टेशनोंपर हिंदुओं और मुसलमानोंके पानीके लिए अलग-अलग बरतनोंके इस्तेमालको बुरा बताया था, लेकिन आज तो सिर्फ मुसलमानोंके लिए और गैर-मुसलमानों या हिंदुओंके लिए अलग डिब्बे रिजर्व किए जाते हैं। मैं नहीं जानता कि यह बुराई कहांतक फैली है, लेकिन मैं यह जरूर जानता हूं कि यह भेद-भाव हिंदुओं और सिखोंके लिए बड़ी शर्मकी बात है। मेरे खयालमें सिर्फ मुसलमानोंकी जानकी हिफाजत करनेके लिए ही रेलवेवालोंको यह फर्क करना जरूरी मालूम हुआ है। अगर हिंदू और सिख लोग मुसलमान मुसाफिरोंके साथ बेजान मालअसबाबकी तरह कभी सलूक न करनेका इरादा कर लें और रेलवे अधिकारियोंको इस बातका यकीन दिला दें कि ऐसा गुनाह वे फिर कभी न करेंगे तो यह भेदभाव किसी भी दिन (जितना जल्दी हो उतना अच्छा) मिटाया जा सकता है। यह तभी हो सकता है, जब लोग अपने पापोंको खुले आम मंजूर करें और समझदार बन जायं। यह बात मैं इस बातका विचार किए बिना कहता हूं कि पाकिस्तानमें आजतक क्या हुआ है या आगे क्या हो सकता है।

नई दिल्ली, ६–११–'४७

: ४६ :

अहिंसा उनका क्षेत्र नहीं

एक अखबारी रिपोर्टमें बताया गया है कि मेजर जनरल करिअप्पाने अहिंसाके बारेमें नीचे लिखी बात कही है :

"आजकी हालतोंमें हिंदुस्तानको अहिंसासे कोई फायदा नहीं होगा। सिर्फ ताकतवर फौज ही हिंदुस्तानको दुनियाके सबसे बड़े राष्ट्रोंमें जगह दिला सकती है।"

मुझे डर है कि अहिंसाके बारेमें ऊपरकी बात कहकर बहुतसे विशेषज्ञोंकी तरह जनरल करिअप्पा अपनी हदसे बाहर चले गए हैं और अनजानमें ही उन्होंने अहिंसाकी ताकतके बारेमें बड़ी गलत धारणा व्यक्त कर दी है। कुदरती तौरपर अपने क्षेत्रमें काम करते हुए उन्हें अहिंसाकी ताकत और उसके कामका बहुत छिछला ज्ञान ही हो सकता है। जीवनभर अहिंसापर अमल करनेके कारण मैं अहिंसाका माहिर होनेका दावा करता हूं, हालांकि मैं बहुत अपूर्ण हूं। साफ और निश्चित शब्दोंमें मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं जितना ज्यादा अहिंसापर अमल करता हूं, उतना ही साफ मुझे यह दिखाई देता है कि मैं अपने जीवनमें अहिंसाको पूरी तरह उतारनेकी हालतसे कोसों दूर हूं। इस तथ्य या सचाईकी जानकारी, जो कि दुनियामें आदमीका सबसे बड़ा फर्ज है, न होनेसे ही जनरल करिअप्पाने यह कहा है कि आजके जमानेमें हिंसाके सामने अहिंसा कुछ नहीं कर सकती; लेकिन मैं तो हिम्मतके साथ यह कहता हूं कि इस ऐटम-बमके जमानेमें शुद्ध अहिंसा ही

ऐसी ताकत है, जो हिंसाकी सारी चालोंको नीचा दिखा सक
है। जनरल करिअप्पा, जिन्हें अब फौजी साइंस अ
फौजी अमलके अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादोंकी मदद न
मिल सकती, इस तरह अपनी सीमाको न लांघते तो अच्छा होत
जनरल करिअप्पासे ज्यादा बड़े-बड़े जनरलोंने काफी सम
दारी और नम्रतासे साफ-साफ शब्दोंमें यह कबूल किया
कि अहिंसाकी ताकत क्या कुछ कर सकती है। इसके बा
उन्हें कहनेका कोई हक नहीं है। हम फौजी साइंस और फौ
अमलका भयानक दिवालियापन उसकी पैदाइशकी जगहमें
देख रहे हैं। जो आदमी सट्टा बाजारमें जूआ खेलकर दि
लिया बना है, उसे क्या उस खास तरहके जूआकी तारीफ
गीत गाने चाहिए ?
नई दिल्ली, ७–११–'४७

: ४७ :

विषमताएं दूर की जायं

[सितंबरके शुरूमें बुनियादी शिक्षा (फंडामेंटल ऐजूकेशन)
बारेमें विचार करनेवाली 'रिजनल स्टडी कान्फरेंस' चीनमें हुई थ
हिंद सरकारके प्रचार-विभागद्वारा निकाले गए बुलेटिनमें गांधीज
कान्फरेंसको भेजा हुआ नीचे लिखा संदेश और उसकी टीका
गई है।]

मुझे संयुक्त राष्ट्रोंके आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृ

संघोंके कामोंमें गहरी दिलचस्पी है, जो शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक प्रयत्नोंके द्वारा शांति कायम करना चाहते हैं। मैं इस बातको पूरी तरह समझता हूं कि जबतक दुनियाके राष्ट्रोंमें आजकी शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक विषमताएं मौजूद रहेंगी तबतक सच्ची सुरक्षा और स्थायी शांति नहीं पैदा की जा सकती। जो कम साधनोंवाले देशोंके मुकाबले अधिक अंधेरेमें हैं, उनके दूर-से-दूरके घरोंमें भी ज्ञानका प्रकाश पहुंचाया जाय। मेरे खयालमें इस कामकी खास जिम्मेदारी उन देशोंपर है जो आर्थिक और शिक्षाके क्षेत्रमें दूसरोंसे आगे बढ़े हुए हैं। मैं आपकी कान्फरेंसकी हर तरहसे सफलता चाहता हूं और उम्मीद करता हूं कि आप सही ढंगकी शिक्षा देनेके लिए अमलमें लाई जा सकनेवाली कोई ऐसी योजना बना सकेंगे जिससे खासकर उन देशोंमें शिक्षा दी जा सके, जहां माली और दूसरी कमियोंकी वजहसे शिक्षाके कम सुभीते हैं।"

[ऊपरके संदेशपर टीका करते हुए बुलेटिनमें कहा गया है: "गांधीजीके संदेशका बड़ी इज्जत और श्रद्धासे स्वागत किया गया और उसके पढ़े जानेके वक्त कान्फरेंसमें इकट्ठे हुए सारे लोग खड़े रहे। कान्फरेंसने गांधीजीको उनके प्रेरणा देनेवाले संदेशके लिए धन्यवाद और तारीफका खत भेजा था।"]

नई दिल्ली, ७-११-'४७

: ४८ :

जब आशीर्वाद शाप बन जाता है

आशीर्वाद देनेसे इन्कार करते हुए मैंने एक दोस्तको नीचे लिखी बातें कही थीं:

"एक साहसभरा योग्य काम शुरू करनेकी इच्छा रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको किसीका आशीर्वाद लेनेकी इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए, देशके बड़े-से-बड़े आदमीके आशीर्वादकी भी नहीं। एक योग्य काम अपना आशीर्वाद अपने साथ ही लेकर चलता है। दूसरी तरफ अगर किसी अयोग्य कामको बाहरसे कोई आशीर्वाद मिलता है तो वह शाप बन जाता है, जैसा कि उसे बनना चाहिए। सचमुच, मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूं कि बाहरी आशीर्वाद, किसीके कामकी एक-सी प्रगतिमें बाधक होता है; क्योंकि वह काम करनेवालेके दिलमें गलत आशा पैदा करता है और कामकी सफलताके लिए जिस मेहनत और चौकन्नेपनकी जरूरत है, उससे उसे दूर हटा देता है।"

अगरचे मैंने बहुतसे लोगोंसे अक्सर कुछ ऐसी ही बात कही है, फिर भी इस सोच-विचारकर तय की गई रायको उन लोगोंके फायदेके लिए यहां फिरसे दे देना अच्छा समझता हूं, जो अपने कामोंके लिए आशीर्वाद मांगते रहते हैं। इसी तरह मुझे महान् व्यक्तियोंके स्मारकोंको आशीर्वाद देनेके लिए कहा गया है और मुझे लाचार होकर करीब-करीब वही जवाब देना पड़ा है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

नई दिल्ली, ११-११-'४७

: ४९ :

कुरुक्षेत्रके निराश्रितोंसे[1]

मैं नहीं जानता कि आजकी मेरी बात सिर्फ आप लोग ही सुन रहे हैं या दूसरे भी सुन रहे हैं। हालांकि मैं ब्राडकास्ट-भवनसे बोल रहा हूं, लेकिन इस तरहकी चर्चामें मुझे दिलचस्पी नहीं है। दुःखियोंके साथ दुःख उठाना और उनके दुःखोंको दूर करना ही हमेशा मेरे जीवनका काम रहा है। इसलिए मुझे आशा है कि मेरे इस भाषणको आप लोग इसी नजरसे देखेंगे।

जब मैंने यह सुना कि कुरुक्षेत्रमें दो लाखसे ऊपर निराश्रित आ गए हैं और उनकी तादाद बढ़ती ही जा रही है तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। यह खबर सुनते ही मेरी इच्छा हुई कि मैं आप लोगोंसे आकर मिलूं। लेकिन मैं एकदम दिल्ली नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि यहां कांग्रेस वर्किंग कमेटीकी बैठकें हो रही थीं और उनमें मेरा हाजिर रहना जरूरी था। श्री घनश्यामदास बिड़लाने सुझाया कि मैं आपको रेडियोपर संदेश दूं। इसलिए आपसे आज यह चर्चा कर रहा हूं।

दो दिन पहले अचानक जनरल नाथूसिंह, जिन्होंने कुरुक्षेत्र-छावनीकी व्यवस्था की है, मुझसे मिलने आए और उन्होंने मुझे आप लोगोंकी मुसीबतें कह सुनाईं। केंद्रीय सरकारने फौजको आपकी छावनीका बंदोबस्त अपने हाथमें

[1] दिवाली के दिन आलइंडिया रेडियो से दिया गया भाषण।

लेनेके वास्ते इसलिए नहीं कहा कि वह आपको किसी तरह दबाना चाहती है। उसने ऐसा सिर्फ इसलिए किया कि फौजके लोग छावनीका बंदोबस्त करनेके आदी होते हैं और वे होशियारीसे यह सब करना जानते हैं।

जो दुःख उठाते हैं, वे अपने दुःखोंको सबसे ज्यादा जानते हैं। आपकी छावनी कोई मामूली नहीं है, जहां हर आदमी एक-दूसरेको जान सके। आपकी छावनी एक शहर है और अपने साथी निराश्रितोंसे आपका संबंध सिर्फ दुःख-दर्दके जरिए ही है। आप सब एकसे दुःखी हैं।

मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि छावनीके अधिकारियों या अपने पड़ोसियोंके साथ आपका वह सहयोग नहीं है, जो छावनी-के जीवनको कामयाब बनानेके लिए आपको करना चाहिए। मैं आपके दोषोंकी तरफ आपका ध्यान खींचकर आपकी सबसे अच्छी सेवा कर सकता हूं। वही मेरे जीवनका मंत्र रहा है, क्योंकि उसीमें सच्ची दोस्ती समाई हुई है। और मेरी सेवा सिर्फ आपके या हिंदुस्तानके लिए नहीं है, वह तो सारी दुनियाके लिए है; क्योंकि मैं जाति या धर्मकी सीमाओंको नहीं मानता। अगर आप अपने दोषोंको दूर कर दें तो आप अपने आपको ही नहीं, बल्कि सारे हिंदुस्तानको फायदा पहुंचाएंगे।

यह जानकर मेरे दिलको चोट पहुंचती है कि आपमेंसे बहुतोंके पास रहनेको जगह नहीं है। यह सच्ची कठिनाई और मुसीबत है—खासकर पंजाबकी कड़ी ठंडमें, जो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। आपकी सरकार आपको आराम पहुंचानेकी भरसक कोशिश कर रही है। बेशक, आपके

प्रधान मंत्रीपर इसका सबसे बड़ा बोझ है। राजकुमारी और डॉ० जीवराज मेहताके मातहत सरकारका स्वास्थ्य-विभाग भी आप लोगोंकी मुसीबतोंको कम करनेके लिए कड़ी मेहनत कर रहा है। इस संकटमें दूसरी कोई भी सरकार इससे अच्छा काम नहीं कर सकती थी। आपकी मुसीबतों और विपदाओंकी कोई हद नहीं है और सरकारकी तो अपनी सीमाएं हैं ही। लेकिन आपको चाहिए कि आप अपने दुःख-दर्दका जितनी हिम्मत, धीरज और खुशीसे सामना कर सकें, करें।

आज दीवाली है; लेकिन आज आप या दूसरे कोई रोशनी नहीं कर सकते। आज खुशी मनानेका समय नहीं है। हमारी सबसे अच्छी दीवाली मनेगी आप लोगोंकी सेवा करके, और तब, जब आप सब उसे अपनी छावनीमें भाई-भाई-जैसे रहकर और हर एकको अपना सगा समझकर मनाएंगे। अगर आप ऐसा करेंगे तो अपनी मुसीबतोंपर विजय पा लेंगे।

जनरल साहबने मुझे बताया कि छावनीमें आज भी कौन-कौन-सी बातोंकी जरूरत है। उन्होंने मुझसे कहा कि अब वहां ज्यादा निराश्रित न भेजे जायं। ऐसा मालूम होता है मानों निराश्रितोंको ठीक तरीकेसे अलग-अलग जगहोंमें बांटा नहीं जाता। यह समझमें नहीं आता कि वे वहां क्यों आते हैं और मुकामी अधिकारियोंको पहलेसे जताए बिना अलग-अलग जगहोंमें इतनी बड़ी तादादमें क्यों इकट्ठे कर दिए जाते हैं? कल शामको मैंने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणमें ऐसी हालत पैदा करनेके लिए पूरबी पंजाबकी सरकारकी टीका की थी। मुझे अभी-अभी वहांकी सरकारके एक मंत्रीका

खत मिला है, जिसमें कहा गया है कि यह हमारा दोष नहीं है, इसके लिए केंद्रीय सरकार जिम्मेदार है।

अव केंद्रकी या सूवोंकी सारी सरकारें जनताकी सरकारें हैं। इसलिए एकका दूसरीपर इस तरह दोष डालना शोभा नहीं देता। सवको मिलकर जनताके भलेके लिए काम करना चाहिए। मैं यह सव इसलिए कहता हूं कि आप लोग भी अपनी जिम्मेदारी समझें।

आपको छावनीमें अनुशासन कायम रखनेमें मदद करनी चाहिए। छावनीकी सफाईका काम आपको अपने हाथमें ले लेना चाहिए। मैं पंजाबको मार्शल लॉ के दिनोंसे अच्छी तरह जानता हूं। मैंने पंजाबियोंके गुणों और दोषोंको पहचाना है। उनमेंसे एक दोष---और वह सिर्फ पंजाबियोंका ही नहीं है--यह है कि उन्हें समाजी आरोग्य और सफाईका बिलकुल ज्ञान नहीं है। इसीलिए मैंने अक्सर कहा है कि हम सबको हरिजन बन जाना चाहिए। अगर हम ऐसा करेंगे तो ऊंचे उठेंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि आपमेंसे हर एक---मर्द, औरतें और बच्चे भी---अपने डाक्टरों और छावनीके अफसरोंको कुरुक्षेत्रको साफ रखनेमें मदद करें।

दूसरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं वह यह है कि आप अपना राशन बांटकर खाइए। जो कुछ आपको मिले, उसमें संतोष कीजिए। न तो अपने हिस्सेसे ज्यादा लीजिए और न ज्यादाकी मांग कीजिए। समाजी रसोड़े चलानेकी कला हमें सीखनी चाहिए। इस तरहसे भी आप एक-दूसरेकी सेवा कर सकते हैं।

मुझे इस खतरेकी तरफ भी आपका ध्यान खींचना चाहिए कि आप कहीं आलसकी रोटी खानेके आदी न बन जाएं। आपको रोटी कमानेके लिए शरीर-श्रम करना चाहिए। मुमकिन है, आप यह सोचें कि आपके लिए हर बातका इंतजाम करना सरकारका फर्ज है। सरकारका फर्ज तो है ही, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपका फर्ज खत्म हो जाता है। आपको सिर्फ अपने ही लिए नहीं, बल्कि दूसरोंके लिए भी जीना चाहिए। आलस हर एकको नीचे गिराता है। वह हमें इस संकटको कामयाबीसे पार करनेमें तो मदद कर ही नहीं सकता।

गोवाकी एक बहन मुझसे मिलने आई थीं। उनसे मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपकी छावनीकी बहुत-सी औरतें कातना चाहती हैं। कोई रचनात्मक काम जो हमें मदद पहुंचाता है करनेकी इच्छा रखना अच्छी बात है। अब आप सबको राज्यपर बोझ बननेसे इन्कार कर देना चाहिए। आपको दूधमें शकरकी तरह अपने आसपासके वातावरणमें मिलकर एक हो जाना चाहिए और इस तरह आपकी सरकारपर जो बोझ आ पड़ा है, उसे हलका करनेमें मदद करनी चाहिए। सारी छावनियोंको सचमुच स्वावलंबी बनना चाहिए। लेकिन आज आपके सामने वह आदर्श रखना शायद बहुत ऊंची बात होगी। फिर भी, मैं आपसे यह जरूर कहूंगा कि आपको किसी भी कामसे नफरत नहीं करनी चाहिए। सेवाका जो कोई भी काम आपके सामने आए, उसे आपको खुशी-खुशी करना चाहिए और इस तरह कुरुक्षेत्रको आदर्श जगह बनाना चाहिए।

लोगोंने मेरी गरम कपड़ों, रजाइयों और कंबलोंकी अपीलको सुनकर उदारतासे दान दिया है। सरदार पटेलकी अपीलका भी उन्होंने अच्छा स्वागत किया है। इन चीजोंमें आपका भी हिस्सा है; लेकिन अगर आप लोग आपसमें झगड़ेंगे और कुछ लोग अपनी जरूरतसे ज्यादा हिस्सा लेंगे तो आपको ही नुकसान होगा। आज भी आप बड़ी-बड़ी मुसीबतें उठा रहे हैं, लेकिन आपके गलत कामसे वे और ज्यादा बढ़ जायंगी।

अंतमें, मैं उन लोगोंमेंसे नहीं हूं जो यह विश्वास करते हैं कि आप, जो पाकिस्तानमें अपनी जमीनें और घरबार छोड़कर यहां आ गए हैं, वहांसे हमेशाके लिए उखाड़ दिए गए हैं। न मैं यही विश्वास करता हूं कि उन मुसलमानोंके साथ ऐसा बरताव किया जायगा, जिन्हें हिंदुस्तान छोड़नेपर मजबूर किया गया है। मैं तबतक चैन नहीं लूंगा और तबतक भरसक कोशिश करता रहूंगा, जबतक सब लोग इज्जत और सलामतीके साथ लौटकर उन जगहोंमें बस नहीं जाते जहांसे वे आज निकाले गए हैं। जब तक मैं जिंदा रहूंगा तबतक इसी उद्देश्यके लिए काम करूंगा। मरे हुए लोग तो जिलाए नहीं जा सकते, लेकिन जिंदोंके लिये तो हम काम कर सकते हैं। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो हिंदुस्तान और पाकिस्तानके नामपर हमेशाके लिए कालिख पुत जायगी और उससे हम दोनों बरबाद हो जायंगे।

नई दिल्ली, १२–११–’४७

: ५० :

मानसशास्त्रीय टीका

रिचर्ड ग्रेग साहवसे तो 'हरिजन'के पढ़नेवाले परिचित होंगे ही। वह शांतिनिकेतनमें रहे थे और कई वरस हुए, मेरे साथ सावरमतीमें भी थे। वह मुझे लिखते हैं :

"मैं वहुत जानता नहीं हूं, इसलिए हिचकिचाता हूं। फिर भी आपको एक विचार भेजनेका साहस करता हूं। अगर हम हिंदुस्तानके आजके जातीय लड़ाई-झगड़ोंको उस विचारसे देखें तो शायद हमें लोगोंका नैतिक दोष कुछ कम नजर आएगा और आगेके लिए हमें आशा और वल भी मिलेगा।

"मेरी रायमें वहुत मुमकिन है कि यह हिंसा जातीय घृणा और अविश्वासको उतना नहीं वताती, जितना कि जनताके गुस्सेको, जो उसकी पीड़ा और उसपर सदियोंसे होनेवाले जुल्मके कारण उसके दिलमें दवा पड़ा था। यह जुल्म केवल विदेशी राज्यके ही कारण न था। इसमें विदेशी आधुनिक सामाजिक, आर्थिक और माली तरीके भी शामिल थे, जो उन पुराने धार्मिक तरीकोंसे विलकुल उलटे थे जो कि जनताके स्वभावका एक अंग वन गए थे। विदेशी तरीकोंसे मेरा मतलव है अंग्रेजी जमींदारी-प्रथा, अधिक सूदखोरी, भारी कर या महसूल जो वस्तुके रूपमें नहीं, वल्कि नकदीके रूपमें लिए जाते हैं, और दूसरे हस्तक्षेप, जो उन्होंने गांववालोंके उस जीवनमें किए, जिसे सव जातियां सदियोंसे विताती चली आ रही थीं।

"मनोविज्ञान हमें वताता है कि वचपनकी सख्त नाकामियां व्यक्तिके जीवनमें देरतक दवी पड़ी रहती हैं, चाहे उनका कारण न भी रहा हो। वादमें वह सुलगती हुई आग कभी भी कोई उत्तेजना मिलनेपर भड़क उठती है और वह गुस्सा हिंसाके रूपमें वेगुनाहोंपर निकल पड़ता है।

यहूदियोंपर यूरोपमें जो जुल्म हुए हैं उनकी और दूसरे कई हिंसक कामोंकी जड़ इस तरह हम समझ सकते हैं। मैं मानता हूं कि हिंदुस्तानमें धर्मपर आधारित चुनावक्षेत्रोंने इस लड़ाई-झगड़ेका रास्ता जरूर पैदा किया, लेकिन मैं यकीन करता हूं कि जो पुराना कारण मैंने आपको बताया है, वही उस गुस्सेका सबसे बड़ा कारण है जो इस भयानक शक्तिसे आज फूट पड़ा है। ऐसा माननेसे हम समझ सकेंगे कि सब मुल्कोंके इतिहासमें जब कभी राजकी बागडोर एक हाथसे दूसरे हाथमें गई है तब क्यों हमेशा थोड़ी-बहुत खून-खराबी हुई है। जनता किसी-न-किसी जुल्मका शिकार तो होती ही है, जिसके कारण उसके दिलमें गुस्सा भरा होता है। जब ताकत एक हाथसे दूसरेके हाथमें जाती है, या कोई स्वार्थी नेता इसका नाजायज फायदा उठाते हैं तो वह गुस्सा भड़क उठता है।

"अगर मेरा विचार ठीक है तो यह मालूम होता है कि हिंदुस्तानकी जातीय नफरत और अविश्वासकी बुनियाद उतनी गहरी नहीं है, जितनी आज दिखाई देती है। इसके मानी यह भी हैं कि जब आप अपने लोगोंको उनके पुराने जीवनके तरीकोंपर फिर ला सकेंगे और सबसे ज्यादा जोर धर्म और छोटी संस्थाओं—यानी ग्राम-पंचायत और सम्मिलित कुटुंब—पर देंगे तो लोगोंकी शक्ति हिंसासे फिरकर इन कामोंमें लग जायगी। अगर खादीका काम शरणार्थियोंमें किया जाय तो उनकी शक्ति ऐसे ही अच्छे रास्ते लग जायगी। इस रास्ते बढ़नेमें मुझे आशा नजर आती है।

"यदि मेरे इस पत्रमें कहीं धृष्टता दिखाई दे तो क्षमा कीजिए। मैंने इस उम्मीदसे यह खत लिखा है कि बाहरका एक मामूली आदमी, सिर्फ इसलिए कि वह बाहर है, शायद आशाकी झलक देख पाए, जिसे लड़ाईकी धूल और बदहवासीमें देखना इतना आसान नहीं। जो हो, मुझे आपसे और हिंदुस्तानसे प्यार है।"

बहुतसे मानसशास्त्रियोंने मुझे मनोविज्ञानकी विद्या

सीखनेको कहा है; लेकिन समय न होनेकी वजहसे, मुझे दुःख है कि मैं ऐसा कर नहीं पाया। ग्रेग साहबका खत मेरी समस्या हल नहीं करता और न मेरे दिलमें मनोविज्ञान जाननेका जबरदस्त उत्साह ही पैदा करता है। उनकी दलीलसे मेरा मन साफ़ नहीं, उलटा धुंधला होता है। 'भविष्यके लिए आशा' तो मैंने कभी खोई नहीं और न खोनेवाला हूं; क्योंकि वह तो मेरे अहिंसाके अमर विश्वासमें है ही। हां, मेरे साथ यह बात ज़रूर हुई है कि मैं पहचान गया हूं कि संभवतः अहिंसा चलानेकी मेरी कलामें कोई दोष है। वास्तवमें अंग्रेजी राजके खिलाफ़ तीस सालकी अहिंसक लड़ाईमें हमने अहिंसाको समझा नहीं। इसलिए जो शांति जनताने बहुत धीरजसे उस लड़ाईके दौरानमें रखी, वह भीतरकी नहीं, ऊपरकी ही थी। जिस वक्त अंग्रेजी राज गया, उसके दिलका गुस्सा बाहर निकला। यह कुदरती था कि वह गुस्सा जातीय लड़ाईमें फट पड़े, क्योंकि उस गुस्सेको सिर्फ अंग्रेजी बंदूकोंने दबाकर रखा था। यह मेरी रायमें बिलकुल दुरुस्त और मानने योग्य है। इसमें किसी उम्मीदके टूटनेकी कोई गुंजाइश नहीं। मेरी अहिंसा चलानेकी कला नाकाम रही, तो क्या? उससे अहिंसामें विश्वास थोड़े उठ सकता है? उलटे, यह जानकर कि मेरे तरीकेमें कोई दोष हो सकता है, मेरा विश्वास संभवतः और भी मजबूत हो जाता है।

नई दिल्ली, १२–११–'४७

: ५१ :

बेमेल नहीं

'हरिजन' के एक ग्राहकने मेरे सामने नीचेकी बात रखी है, जो उन्हें एक पहेली मालूम होती है। उसका मैंने नीचे लिखा जवाब भेजा है:—

"एक बार आपने यह कबूल किया है कि आपने ईश्वरको प्रत्यक्ष नहीं देखा है। और 'सत्यके मेरे अनुभव' नामकी अपनी किताबकी भूमिकामें आपने कहा है कि आपने सत्यके रूपमें भगवानको बहुत दूरसे जीता-जागता देखा है। ये दोनों बातें बेमेल मालूम होती हैं। इन दोनोंको मैं ठीक-ठीक समझ सकूं, इसलिए विस्तारसे समझानेकी मेहरबानी कीजिए।"

ईश्वरको आंखोंसे प्रत्यक्ष देखनेमें और उसे बड़ी दूरसे सत्यके रूपमें जीता-जागता देखनेमें बहुत बड़ा अंतर है। मेरी रायमें ऊपरकी दोनों बातें एक दूसरीकी विरोधी नहीं हैं, बल्कि उनमेंसे हर एक दूसरीको समझाती हैं। हम हिमालयको बहुत दूरसे देखते हैं और जब हम उसकी चोटीपर होते हैं तो हम उसे प्रत्यक्ष देखते हैं। लाखों आदमी हिमालयको सैकड़ों मील दूरसे देख सकते हैं, बशर्ते कि वह दिखाई देनेवाली दूरीके भीतर हो। लेकिन बरसोंकी मुसीबतोंके बाद उसकी चोटीपर पहुंचकर तो थोड़े ही लोग उसे प्रत्यक्ष देखते हैं। इसे 'हरिजन'के कॉलमोंमें विस्तारसे समझानेकी जरूरत नहीं मालूम होती। फिर भी, मैं आपका खत और मेरा जवाब 'हरिजन'में छपानेके लिए भेजता हूं, ताकि आपके बताए हुए

दोनों बयानोंमें आपकी तरह किसीको विरोध मालूम होता हो तो उसकी उलझन दूर हो जाय।

नई दिल्ली, १३-११-'४७

: ५२ :

अंकुश

मुझे तो यह साफ नजर आता जा रहा है कि खुराक, कपड़े वगैरहपर जो अंकुश रखा गया है, वह गलत है। मेरे इस विचारके समर्थनमें मेरे पास खत और तार आते रहते हैं।

इसके विरोधमें ऐसे लोग हैं जो अपने आपको इस विषयके विशेषज्ञ मानते हैं। इसलिए वे लोग पंडिताईभरे लेख लिखते हैं। उनमें पुरानी विदेशी सरकारके नौकर भी हैं। इनमेंसे इरादतन किसीकी उपेक्षा करनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। फिर भी अगर उनकी बातको आंख मूंदकर न माननेमें ही उनकी उपेक्षा होती हो तो मैं लाचार हूं। सूरजकी गर्मीमें तपता हुआ कोई आदमी किसी छांहमें रहनेवाले पंडितकी यह बात कैसे मान सकता है कि सूरजकी गर्मी, गर्मी नहीं है और जो आदमी तप रहा है, वह भ्रममें है? यही हालत मेरी है।

विशेषज्ञ और सरकारी नौकर सच्चे दिलसे मानते हैं कि हमारे देशमें पूरा अनाज नहीं है। मैं इससे उलटा मानता हूं और साथ ही यह कहता हूं कि अगर देशमें अनाजकी कमी हो तो वह बहुतसे आदमियोंकी थोड़ी-सी कोशिशसे दूर की जा सकती

है। लोग आलसी बन बैठें या धोखा ही देते रहें, और इस आलस और धोखेकी वजहसे मरें तो उसमें हुकूमत क्या करे ? हुकूमत आलस मिटानेके उपाय सोचे, धोखा दूर करनेकी कोशिश करे, न कि आलसियों और दगाबाजोंके लिए चाहे जैसे, चाहे जहांसे, अनाज लाकर उन्हें दे और इस तरह उनकी दगाबाजी और आलसको बढ़ाए।

मगर मैं कोई लेख लिखने नहीं बैठा हूं। गुजरातके लोग व्यापार करना जानते हैं। गुजरातमें चतुर किसान हैं। वहांकी मिट्टी अच्छी है। पानी भी वहां काफी है। उन लोगोंका क्या खयाल है ? क्या यह बात सही है कि आलस और धोखा अनाजकी कमीका आभास कराते हैं ? अगर न हो तो बंबईमें अंकुश किसलिए है ? अगर आलस और धोखा काम कर रहे हैं तो वे क्यों दूर नहीं होते ? गुजरात ही नहीं, पूरे बंबई इलाकेके किसान और व्यापारी मिलकर क्यों नहीं बताते कि उनके यहां अनाज और कपड़ेकी कमी नहीं है, और अगर हो तो वह तुरंत दूर हो सकती है ? क्या वे इतना नहीं कर सकते ?

नई दिल्ली, १७–११–'४७

: ५३ :

गुरु नानकका जन्म-दिन

मुझे डर है कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह सब नहीं कह सकूंगा। मेरी उम्मीद थी कि आपने फौजी तालीम ली है,

इसलिए आप शांति रखेंगे। यहां वहनें वहुत आवाज कर रही हैं। कुछ वरस पहले जव मैं अमृतसर गया था तो वहां भी ऐसा ही हुआ था। दुःखकी वात है कि वहनोंतक वह तालीम नहीं पहुंची। यह मर्दोंका गुनाह है।

मैं जव यहां आ रहा था तो मैंने रास्तेमें केले व संतरेके छिलके इधर-उधर पड़े देखे। उनसे जगह ही गंदी नहीं हुई थी; वल्कि उसपर चलना भी खतरनाक हो गया था। अपने घरोंके फर्शोंकी तरह ही हमें सड़कोंको साफ रखना चाहिए। मैंने देखा है कि कूड़ेदान नहीं होता तो अनुशासन-प्रिय लोग छिलकोंको कागजमें वांधकर थोड़ी देरको जेवमें डाल लेते हैं और फिर नियत स्थानपर फेंक देते हैं। अगर लोगोंने सामाजिक आचार-विचारके नियम सीख लिए हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि उन्हें स्त्रियोंको भी सिखावें।

आज दस वजे मेरे पास वावा वचित्तरसिंह आए थे। उन्होंने कहा कि आज [1]गुरु नानकका जन्म-दिन है। उसमें शामिल होनेके लिए आपको निमंत्रण देनेको सिक्खोंकी तरफसे मुझे भेजा गया है। उन्होंने यह भी वताया कि सभामें एक लाखसे ऊपर स्त्री-पुरुष इकट्ठे होंगे, जिनमेंसे अधिकतर पश्चिमी पाकिस्तानके दुःखी हैं। मैंने कहा कि मुझको क्यों ले जाते हैं? सिक्ख आज मुझे दुश्मन मानते हैं। फिर भी उन्होंने कहा कि आपको आना ही होगा और जो कुछ कहना चाहते हैं, कह सकते हैं। मैंने कहा कि सभामें दो-एक वात कहूंगा।

---

[1] कार्त्तिक पूर्णिमा।

माता बालकको कड़वी दवा पिलाती है। यह बच्चेको अच्छा नहीं लगता, फिर भी माता पिलाती है। मुझे मेरी मां इसी तरह कड़वी दवा देती थी, फिर भी मैं उसकी गोदमें छिप जाता था। मैंने सिक्खोंको जो कुछ कहा है, उसमेंसे एक भी शब्द वापस नहीं लेना चाहता हूं; क्योंकि मैं तो आपका सेवक हूं, भाई हूं।

मेरे साथ सर दातारसिंहकी लड़की है। उनका कितना नुकसान हुआ है? वह ताराज (बरबाद) हो गए हैं, फिर भी आंसू नहीं गिराते हैं। यह देखकर मुझे आनंद होता है। वह मुसलमानोंको दुश्मन नहीं मानते हैं। कहा जाता है कि एक सिक्ख सवा लाखके बराबर है। सवा लाख सिक्खोंके बीचमें मुट्ठीभर मुसलमान नहीं रह सकते क्या? मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा कि झगड़ा शुरू तो पाकिस्तानने किया है, लेकिन पूर्वी पंजाबमें हिंदुओं और सिक्खोंने कुछ कम नहीं किया। हिंदू, सिक्खों-जैसे बहादुर नहीं हैं। सिक्खोंने तो तलवार चलाना सीखा है। हिंदुओंको यह तालीम नहीं मिली।

आप देखते हैं कि शेख अब्दुल्ला मेरे साथ हैं। मैंने तो कहा था कि वे कैसे यहां आ सकते हैं? आज तो मुसलमान सिक्खों और हिंदुओंके दुश्मन हो गए हैं। मगर बाबाने कहा कि वह तो सच्चे शेरे-काश्मीर हैं। उन्होंने बड़ा भारी काम किया है। काश्मीरमें सब मिल-जुलकर रहते हैं। सिक्ख उन्हें मानते हैं। जम्मूमें हिंदुओं और सिक्खोंने मुसलमानोंको कतल किया है, फिर भी शेख अब्दुल्ला जम्मू चले गए। आजके शुभ दिन आपने मुझे और शेख साहबको आदरपूर्वक बुलाया, इसकी मुझे खुशी है।

आजसे आप ज़िंदगीका नया पन्ना शुरू करें तब तो मेरे-

जैसा आदमी जिंदा रह सकता है। आज भी मुसलमानोंको दिल्लीसे भगानेकी कोशिश चल रही है। मैंने आते समय चांदनी चौकमें एक भी मुसलमानको नहीं देखा। यह हम सबके लिए शर्मकी बात है। मुसलमानोंकी तादाद छोटी-सी है। उनको हलाल करना गुनाह है। अगर कोई मुसलमान बेवफा हो तो हुकूमत उससे लड़ेगी, उसे मारेगी। मगर हम क्यों कानून अपने हाथमें लें? आज हम बेगुनाहोंको मारनेके लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसा करके आप कृपाण और सिक्ख धर्मको शरमिंदा करते हैं। इसलिए आजसे आप जिंदगीका नया पन्ना शुरू करें। मैं रावलपिंडी गया था। वहां क्या-क्या हुआ, सब जानता हूं। उसे कभी भूल नहीं सकता। आप लोग पश्चिमी पंजाबसे दुःखी होकर आए हैं, यह मैं समझ सकता हूं; लेकिन हम गुस्सा करके क्या करेंगे? बदला लेनेवाली हमारी हुकूमत तो है ही। गुरु गोविंदसिंहने बेगुनाहोंपर कभी तलवार नहीं चलाई थी। उनके साथ मुसलमान भी रहते थे। गुरु नानकने जो सिखाया है, उसकी हम आज अवगणना कर रहे हैं। नाच-रंगसे धर्मको लजाते हैं। हिंदू, सिक्ख, ईसाई, अंग्रेज कोई भी गुनाह करे तो मुझे चुभता है और मुझे लगता है कि मैं गुनाह करता हूं। मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने दिलोंको साफ करें और अपनी तलवारको म्यानमें रख दें। कोई बदमाशी करे तो हुकूमत उसे देख लेगी। गुरु ग्रन्थ-साहबसे मैं यही अर्ज करता हूं कि वह हर एक सिक्खका दिल साफ बनावें, ताकि वे गुनाहका बदला गुनाहसे न लें।

: ५४ :

आशाकी झलक

जब हर तरफसे निराशा-ही-निराशा होने लगती है तो जब-तब आशाकी किरण भी दिखाई दे जाती है। इस आशाका स्रोत है 'हरिजन' संबंधी मेरे पत्र-व्यवहारकी फाइल, जो खाली समयमें मेरे पढ़नेके लिए सुरक्षित रखी गई है।

बोचासन रेजीडेंशियल स्कूलके शिवभाई पटेलका एक पत्र ऐसा ही है। वार्षिक उत्सवोंमें जितना काम उन्होंने किया है उसीका खुलासा इस पत्रमें है। आजकल हरिजन-आश्रम कहे जानेवाले पहलेके साबरमती सत्याग्रह-आश्रमकी गंगाबहनने और परम उद्योगी रविशंकर महाराजने अपने साथ ही रहनेवाले दो पुत्रोंके सहयोगसे उन्हें बड़ी सहायता पहुंचाई है। हालहीमें जो जलसा हुआ था, उसमें एक विशेषता यह थी कि हमेशाकी तरह पैरसे चलनेवाली धुनाई-मशीनकी पूनियां काममें न लाकर इस बार तुनाई-पद्धतिका ही कार्यक्रम चला। इसी मौकेपर व्यवस्थापकोंने वहांके पिछड़े हुए लोगोंके बच्चोंके लिए जो छात्रालय बनवानेका निश्चय किया था, वह बन गया है और उसमें दस छात्रोंको दाखिल करके कार्यका श्रीगणेश कर दिया गया है। सात साल बाद उन्हें सामान्य स्कूलोंके चारों दर्जे पास छात्रोंके लिए दिनका स्कूल खोलनेकी आज्ञा दी गई है। उन्हें आशा है कि अगले छः वर्षोंमें वे दर्जोंकी संख्या दसतक कर देंगे और अंग्रेजीके बजाय खादी, बढ़ईगिरी और कृषि-विज्ञानकी पढ़ाईकी व्यवस्था भी करेंगे। पिछले

वर्षोंके बावजूद इस साल विद्यार्थियोंके अभिभावकोंको अपने लड़कोंके चरित्र-निर्माणमें रस आने लगा है। नतीजा यह हुआ है कि पिछले अक्तूबरवाले जलसेके बाद चार महीनोंके अंदर ही खूब सिगरेट फूंकनेवाले और तेज चाय पीनेवाले लड़कोंने अपनी ये आदतें छोड़ दीं। लड़कोंके सुधारसे प्रभावित होकर उनके संरक्षकोंने भी मुंहसे चिमनियोंकी तरह धुआं उगलनेवाली और पाचन-शक्तिको खराब कर देने-वाली अपनी लत छोड़ दी है। पहले जब लड़कोंको स्कूलमें भर्ती किया गया था तब वे न तो सीधे बैठ सकते थे और न पांच मिनटके लिए चुप ही रह सकते थे। अब उन्हें एक घंटेतक शांत होकर हाथसे सूत कातना रुचता है। संस्थाकी गोशालाकी देखभाल गंगाबहन करती हैं और सबको दूध मिल जाय इसका ध्यान रखती हैं।

उत्सवके दिनोंमें विद्यार्थी अच्छे-अच्छे संवाद करते थे जिन्हें सुननेके लिए काफी लोग इकट्ठे होते थे। लड़कोंने बिना किसी हिचकके खादीकी शक्लमें आनेसे पहलेकी रुईकी सभी क्रियाओंका प्रदर्शन किया। तेईस विद्यार्थियोंने खुशखत लिखाईकी प्रतियोगितामें भाग लिया जब कि इस विषयको ऐसी अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा जाता है कि मानों खुशखत लिखाईका अच्छी शिक्षामें कोई स्थान ही नहीं है।

नई दिल्ली, २२–११–'४७

: ५५ :

जैसा सोचो वैसा ही करो

राजकुमारीने डॉ० माड़ रॉयडन द्वारा उनके पास भेजा गया एक खत मुझे पढ़नेके लिए दिया है। उस खतका संगत अंश मैं यहां देता हूं :

"यह देखकर मुझे सचमुच बड़ा अचरज होता है कि दुनियाका सबसे बड़ा ईसाई, ईसाई संप्रदायमेंसे नहीं है। पिछले दो-तीन हफ्तोंसे मैं नया लिखा हुआ आलबर्ट स्विट्जरका जीवन-चरित पढ़ रहा हूं। उसमें भी मुझे ऊपर बताया हुआ विरोध नजर आता है। हिंदुस्तानमें लोग स्विट्जरके नामसे परिचित हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। मगर मुझे खुदको लगता है कि अपनी महत्तामें आज वह दुनियामें बेजोड़ है।....आप शायद जानते होंगे कि 'सनातनी' ईसाई स्विट्जरको शककी नजरसे देखते हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि हमारा उद्धार करनेवाले ईसामसीहके बारेमें उसका जितना चाहिए उतना ऊंचा खयाल नहीं है। और फिर भी आप मेरी बात मानें कि आज सारी दुनियामें ऐसा ईसाई नहीं है, जो स्विट्-जर-जैसी हिम्मत-भरी अडिग श्रद्धासे और पूरी-पूरी समर्पणकी भावनासे ईसामसीहका अनुसरण करता हो। फिर मैंने स्विट्जरकी फिलासफी पढ़ी, 'जीवनके बारेमें उसका पूज्य भाव' देखा और नाजारेथके यीशुके बारेमें उसके द्वारा हमेशा किए गए उल्लेखको पढ़ा। तब मुझे यकीन हो गया कि स्विट्जरने अपने पाठकोंके दिलोंमें ईशुकी जितनी ऊंची जगह दी है, उतनी किसी दूसरेने नहीं दी। दूसरे दार्शनिकों और स्विट्जरमें सिर्फ इतना ही फर्क है कि स्विट्जर जो कुछ विचार करता है, लिखता है, या कहता है, उसपर अपने जीवनमें अमल किए बिना नहीं रहता; बल्कि वह विचार ही इस तरह करता है कि उसपर उसे अमल करना है।

अव मेरी समझमें आया कि क्यों उसके विचार, पाठकोंके मनपर अपनी कठोर और भयजनक प्रामाणिकताकी छाप डालते हैं। अमल करनेका खयाल रखे वगैर अगर आप विचार करते रहें तो सव किस्मकी झूठी वातोंका विचार करना आसान हो जाता है। अगर आपको पहलेसे ही इस वातका भान हो कि जो विचार आप करते हैं, उसपर आपको जीवनमें अमल करना है तो खयाल कीजिए कि कैसी वारीकीसे और कितने सच्चे दिलसे आप विचार करेंगे!"

नई दिल्ली, २२–११–'४७

: ५६ :

बहादुरी या बुज़दिलीकी मौत

एक वंगाली दोस्तने पूर्वी पाकिस्तानसे हिंदुओंके हिजरत करनेपर वंगालीमें एक लंवा खत लिखा है। उसका सार यह है कि अगरचे उन-जैसे कार्यकर्त्ता मेरी दलीलको समझते और उसकी तारीफ करते हैं, और साथ ही वहादुरी और वुज़दिलीकी मौतके फर्कको भी समझते हैं, मगर मामूली आदमीको मेरे वयानमें हिजरत करनेकी ही सलाह नजर आती है। वह कहता है—

"अगर हर हालतमें मौतसे ही पाला पड़ना है तो धीरज रखनेकी कोई कीमत नहीं रह जाती; क्योंकि इन्सान मौतसे वचनेके लिए ही जीता है।"

इस दलीलमें उस वातको पहलेसे ही मान लिया गया है,

जिसे साबित करना है। इन्सान सिर्फ मौतसे बचनेके लिए ही नहीं जीता। अगर वह ऐसा करता है तो मेरी सलाह है कि वह ऐसा न करे। उसे मेरी सलाह है कि अगर वह ज्यादा न कर सके तो कम-से-कम मौत और जिंदगी दोनोंको प्यार करना सीखे। कोई कह सकता है कि यह एक मुश्किल बात है और इसपर अमल करना और भी मुश्किल है। मगर हर उचित और महान् काम मुश्किल तो होता ही है। ऊपर उठना हमेशा मुश्किल होता है। नीचे गिरना आसान है और उसमें अक्सर फिसलन होती है। जिंदगी वहींतक जीने लायक होती है, जहांतक मौतको दुश्मन नहीं, बल्कि दोस्त माना जाता है। जिंदगीके लालचोंको जीतनेके लिए मौतकी मदद लीजिए। मौतको टालनेके लिए एक बुजदिल आदमी अपनी इज्जत, अपनी औरत, अपनी लड़की, सब कुछ सौंप देता है और एक हिम्मतवर आदमी अपनी इज्जत खोनेके बजाय मौतसे भेंटना ज्यादा पसंद करता है। जब समय आएगा, जो कि आ सकता है, तब मैं अपनी सलाहको लोगोंकी कल्पनाके लिए नहीं छोड़ूँगा, बल्कि क्रियाकी भाषामें उसे करके दिखा दूंगा। आज अगर सिर्फ एक या दो ही आदमी मेरी सलाहपर चलते हैं या कोई भी नहीं चलते तो इससे उसकी कीमत घट नहीं जाती। शुरुआत हमेशा कुछ ही लोगोंसे होती है। एक आदमीसे भी शुरुआत होती है।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५७ :

नेशनल गार्ड

पूर्वी बंगालसे एक भाईने खत लिखकर मुझसे पूछा है :

"पाकिस्तानकी सरकार नेशनल गार्ड या किसी दूसरे नामसे एक स्वयंसेवक-सेना जरूर खड़ी करेगी। अगर हिंदुओंसे उसमें शामिल होनेके लिए कहा जाय तो वे क्या करें? अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए जायं तो हिंदू क्या करें?"

मौजूदा परिस्थितिमें इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। करीब-करीब हर मुसलमानपर यूनियनमें शक किया जाता है। इसी तरह चाहे पूर्वी पाकिस्तान हो, चाहे पश्चिमी, दोनोंमें हिंदुओं और सिक्खोंको शककी नजरसे देखा जाता है। अगर उस फौजमें भर्ती होनेके लिए दिलसे बुलाया जाता है तो मेरी सलाह है कि हिंदू भर्ती हो जायं। बेशक भर्तीकी शर्तें सबके लिए एक-सी हों और किसीके धर्मके साथ कोई दस्तंदाजी न हो। और अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए गए और हिंदुओंको नहीं बुलाया गया तो आजकी परिस्थितिमें हिंदू चुपचाप बैठ जायं। कोई आंदोलन न करें और ऐसा करते हुए दिलोंमें भी गुस्सा न रखें।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५८ :

विश्वास नहीं होता

वही बंगाली भाई[1] लिखते हैं :

"पूर्वी बंगालकी सरकारने अपने गजटमें यह हुक्म निका
जो लोग अखंड बंगालकी नीतिकी हिमायत करेंगे, उन्हें मौत
दी जायगी।"

इस बातपर विश्वास कर सकनेके पहले मैं सरकारी
नकल देखना चाहूंगा। मुझे विश्वास है कि अगर इस
कोई हुक्म होगा भी तो उसके ठीक-ठीक शब्दोंका
दूसरा ही होगा। मैं पूर्वी बंगालमें अखंड बंगालकी
करनेके अपराधको समझ सकता हूं। लगभग स
और बहुतसे मुसलमान ऐसे मिलते हैं जो बंटवारेके
राय रखते हैं। फिर भी, कोई पागल आदमी ही
हो चुके बंटवारेके सामने लड़नेकी हिम्मत करेगा। बं
बंगाल सिर्फ दोनों पार्टियोंकी मरजीसे ही अखंड बन स
लेकिन अगर किसीको जनताकी रायकी एकताकी तरफ
की इजाजत न दी जाय तब तो दोनों पार्टियोंकी वह
नामुमकिन हो जायगी। ऐसा पागलपनभरा हुक्म
सरकार न निकालेगी।

नई दिल्ली, २३–११–'४७

---

[1] २३-११-'४७ के पिछले लेखमें जिनका जिक्र है।

: ५६ :

भाषावार विभाजन

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं :—

"नई-नई विद्यापीठें खोलनेके बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा। मैं यह मानता हूं कि भाषावार प्रान्तोंकी रचनाके पहले नई विद्यापीठें स्थापित करनेमें कठिनाई होगी। लेकिन प्रान्तोंको भाषाके आधारपर बनानेमें कांग्रेसकी ओरसे इतनी ढिलाई क्यों हो रही है, यह मैं समझ नहीं सका हूं। कांग्रेस सन् १९२० से ही यह मानती आई है कि प्रान्तोंकी पुनर्रचना विविध-भाषाओंके अनुसार हो। लेकिन मौका आनेपर अब इस कामको लम्बानेकी या टालनेकी कोशिश की जा रही है, ऐसा मेरा ख्याल है। विधान परिषद्में भी इस विषयको स्थगित-सा कर दिया गया है। यह बात मुझे उचित नहीं जान पड़ती। बिना भाषावार प्रान्त रचना हुए न तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषाको बनाना आसान होगा और न अंग्रेजीको राजभाषाके स्थानसे हटाना सरल होगा। बम्बई, मद्रास और मध्यप्रान्त बरार जैसे बेढंगे और बहुभाषी प्रान्तोंका हमारे नये विधानमें स्थान ही नहीं होना चाहिए। और अगर हमने इस प्रश्नको टालनेकी कोशिश की तो एक ही प्रान्तके विभिन्न भाषा बोलनेवालोंका पारस्परिक विद्वेष अधिक बढ़ता जायगा। बहुभाषी प्रान्त रखनेसे भाषा-द्वेष कम नहीं होगा, बल्कि दिन-दिन बढ़ेगा, यह स्पष्ट है। आज देशके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्याने भयंकर रूप धारण किया है और हमारे नेताओंकी शक्तियां उसी ओर अधिक लगी हैं, यह ठीक है। लेकिन अगर देशका बंटवारा करना ही था तो कई साल पहले ही कर लेना था। उस हालतमें इतनी खून-खराबी न होती। इसी तरह अगर हमें प्रान्तोंका बंटवारा भाषावार करना है तो देरी करनेसे

कोई फ़ायदा नहीं होगा। नुक़सान भी होगा, क्योंकि कटुता बढ़ती जायगी।"

फिर भी भाषावार सूबोंके विभाजनमें देर होती है, उसका सबब है। उसका कारण आजका बिगड़ा हुआ वायुमंडल है। आज हरएक आदमी अपना ही देवता है, मुल्कका कोई नहीं। मुल्ककी ओर जानेवाले, उसका भला सोचनेवाले लोग हैं जरूर, लेकिन उनकी सुने कौन? अपनी ओर खींचनेवाले लोग शोर मचाते हैं, इसलिए उनकी बात सब सुनते हैं। दुनिया ऐसी है न?

आज भाषावार सूबोंका विभाजन करनेमें झगड़ेका डर रहता है। उड़िया भाषाको ही लीजिए। उड़ीसा अलग सूबा बन गया है, फिरभी कुछ-न-कुछ खींच रही ही है। एक ओर आंध्र, दूसरी ओर बिहार और तीसरी ओर बंगाल है। कांग्रेस ने तो भाषावार विभाजन सन् १९२० में किया। क़ानूनन तो उड़िया बोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हों? बम्बईके कैसे? आपसमें मिलकर सब सूबे आवें और अपनी हद बना लें तो कानूनके अनुसार विभाग आज बन सकते हैं। आज हुकूमत यह बोझ उठा सकती है? कांग्रेसकी जो ताकत १९२० में थी, वह आज है? आज उसकी चलती है?

आज तो दूसरे हकदार भी पैदा हो गए हैं। ऐसे मौकेपर हिन्दुस्तान बेहाल-सा लगता है। आज तो संघ (मेल) के बदले कुसंघ (फूट) है, उन्नति के बदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है। जब कौमी झगड़े बंद होंगे तब हम समझ

सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। ऐसी हालतमें भाषावार विभाजन लोग आपसमें मिलकर कर लें तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नहीं।

नई दिल्ली. २४-११-'४७

: ६० :

इसमें तुलना कैसी ?

एक वजीरने कुछ दिनों पहले मुझसे पूछा था :

"कई वार मैंने सुना है कि धर्म और धर्माभिमान और स्वदेशाभिमानकी तुलना करें तो स्वदेशाभिमान ऊंचा ठहरता है। क्या आप इसे मानते हैं?"

मैंने जवाव दिया, "मैं नहीं मानता। एक ही जातिकी चीजोंके बीच तुलना की जा सकती है। अलग-अलग जातिकी चीजोंकी तुलना करना असंभव है। हर चीज अपनी जगहपर रहते हुए दूसरी चीजोंके बरावर ही कीमत रखती है। इन्सानको अपना धर्म और अपना देश दोनों प्यारे हैं। वह एकको देकर दूसरा नहीं लेगा। उसे दोनों एकसे प्रिय हैं। वह रावणकी चीज रावणको देगा और रामकी रामको। अगर रावण अपनी मर्यादा तोड़ दे तो रामका भक्त दूसरे रावणको ढूंढने नहीं जायगा। मगर वह मर्यादाको तोड़नेवाले रावणसे ही निपट लेगा।"

इस किस्मकी मुश्किलोंके वारेमें मुझे सत्याग्रह-जैसा अमूल्य शस्त्र मिला। एक मिसाल लीजिए। मान लीजिए कि

कोई फ़ायदा नहीं होगा। नुक़सान भी होगा, क्योंकि कटुता बढ़ती जायगी।"

फिर भी भाषावार सूबोंके विभाजनमें देर होती है, उसका सबब है। उसका कारण आजका बिगड़ा हुआ वायुमंडल है। आज हरएक आदमी अपना ही देवता है, मुल्कका कोई नहीं। मुल्ककी ओर जानेवाले, उसका भला सोचनेवाले लोग हैं जरूर, लेकिन उनकी सुने कौन? अपनी ओर खींचनेवाले लोग शोर मचाते हैं, इसलिए उनकी बात सब सुनते हैं। दुनिया ऐसी है न?

आज भाषावार सूबोंका विभाजन करनेमें झगड़ेका डर रहता है। उड़िया भाषाको ही लीजिए। उड़ीसा अलग सूबा बन गया है, फिरभी कुछ-न-कुछ खींच रही ही है। एक ओर आंध्र, दूसरी ओर बिहार और तीसरी ओर बंगाल है। कांग्रेस ने तो भाषावार विभाजन सन् १९२० में किया। क़ानूनन तो उड़िया बोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हों? बम्बईके कैसे? आपसमें मिलकर सब सूबे आवें और अपनी हद बना लें तो कानूनके अनुसार विभाग आज बन सकते हैं। आज हुकूमत यह बोझ उठा सकती है? कांग्रेसकी जो ताकत १९२० में थी, वह आज है? आज उसकी चलती है?

आज तो दूसरे हकदार भी पैदा हो गए हैं। ऐसे मौकेपर हिन्दुस्तान बेहाल-सा लगता है। आज तो संघ (मेल) के बदले कुसंघ (फूट) है, उन्नति के बदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है। जब कौमी झगड़े बंद होंगे तब हम समझ

सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। ऐसी हालतमें भाषावार विभाजन लोग आपसमें मिलकर कर लें तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नहीं।

नई दिल्ली. २४–११–'४७

: ६० :

इसमें तुलना कैसी ?

एक वजीरने कुछ दिनों पहले मुझसे पूछा था :

"कई बार मैंने सुना है कि धर्म और धर्माभिमान और स्वदेशाभिमानकी तुलना करें तो स्वदेशाभिमान ऊंचा ठहरता है। क्या आप इसे मानते हैं ?"

मैंने जवाब दिया, "मैं नहीं मानता। एक ही जातिकी चीजोंके बीच तुलना की जा सकती है। अलग-अलग जातिकी चीजोंकी तुलना करना असंभव है। हर चीज अपनी जगहपर रहते हुए दूसरी चीजोंके बराबर ही कीमत रखती है। इन्सानको अपना धर्म और अपना देश दोनों प्यारे हैं। वह एकको देकर दूसरा नहीं लेगा। उसे दोनों एकसे प्रिय हैं। वह रावणकी चीज रावणको देगा और रामकी रामको। अगर रावण अपनी मर्यादा तोड़ दे तो रामका भक्त दूसरे रावणको ढूंढने नहीं जायगा। मगर वह मर्यादाको तोड़नेवाले रावणसे ही निपट लेगा।"

इस किस्मकी मुश्किलोंके बारेमें मुझे सत्याग्रह-जैसा अमूल्य शस्त्र मिला। एक मिसाल लीजिए। मान लीजिए कि

एक आदमीकी मां जिंदा है, औरत जिंदा है और उसकी एक लड़की है। अपनी-अपनी जगहपर ये तीनों उसे एक जैसी ही प्यारी होनी चाहिए। जब कोई कहता है कि अपनी औरतके खातिर इन्सान अपनी मांको और लड़कीको छोड़ सकता है तब मुझे यह जंगली भूल मालूम पड़ती है। इससे उलटा भी वह नहीं कर सकता। अपनी मां या लड़कीके लिए औरतको भी वह नहीं छोड़ेगा। और मान लीजिए कि तीनों-मेंसे एक भी अपनी मर्यादा छोड़ती है तो तीनों शक्तियोंके बीचमें संतुलन बनाए रखनेके लिए वह सत्याग्रहकी नीतिका उपयोग करेगा।

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६१ :

हिम्मत न हारिए

मैडम ऐंडमंड प्रिवेटके २७ अगस्त, १९४७ के पत्रका नीचेका हिस्सा यहां दिया जाता है :

"आज मुझे लगता है कि मैं आपको यह बता दूं कि हिंदुस्तानकी पिछली महान् घटनाओंका हमपर कैसा गहरा असर हुआ है। यहां मेरा मतलब हिंदुस्तानकी आजादीसे और उसपर हमें होनेवाले आनंदसे है।

"हां, हम जानते हैं कि आपको हिंदुस्तानके आजादी मिलजानेसे कोई खुशी नहीं हुई। हमने इस बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा है; लेकिन

बापू ! आप हिम्मत न हारिए। सोचिए, जरूर सोचिए कि हम पश्चिम-वालोंके लिए उसका क्या महत्त्व है। हिंदुस्तानने अपने विरोधीका खून बहाए बिना यह क्रांति की और वह आजाद हो गया। भूतकालसे मुकाबला करनेपर यह क्रांतिकारी घटना जबरदस्त तरक्की मालूम होती है। हिंदुस्तानकी यह कामयाबी इतनी ऊंची है कि इतिहासमें इतने बड़े पैमानेपर उसकी कहीं मिसाल नहीं मिलती।

"ओ बापू ! क्या खूनकी भयानक होली खेलकर हाल ही बाहर निकलनेवाले यूरोपके हम लोगोंके खातिर आप यह नहीं देख सकते कि हिंदुस्तानका नया प्रभात हमें कितना चमकीला, कितना लुभावना और कितना अलौकिक मालूम होता है ?

"ओ हमारी अनोखी आशाके प्रतीक बापू ! आप हमारी खुशीसे धीरज रखिए, हिम्मत बांधिए और दृढ़ बनिए। हम आपको सिर्फ अपना आध्यात्मिक नेता ही नहीं मानते, बल्कि ऐसे आदमीका जीता-जागता उदाहरण समझते हैं, जिसने समतोल या प्रसन्नता खोए बिना रोजाना जिंदगीमें अपने विश्वासपर पूरी तरह अमल किया है। क्या आपने ही हमें अपने धर्मका यह कीमती संदेश नहीं दिया है कि फलकी आशा रखे बिना पूरे दिलसे अपना काम करो और बाकी सब भगवानके भरोसे छोड़ दो ? आपने जो कुछ किया, अपनी पूरी श्रद्धा और हिम्मतके साथ किया। अब भगवान हमें यह दिखाता है कि अहिंसासे, जो अनोखी आशाकी जननी और हमारी सभ्यताको बरबादीसे बचानेका एकमात्र साधन है, क्या-क्या हासिल किया जा सकता है। शायद आपकी दलील यह है कि हिंदुस्तानकी आजादीकी लड़ाईमें जिस अहिंसाका उपयोग किया गया, वह हमेशा पूर्ण नहीं थी; लेकिन इतना तो मुझे पक्का विश्वास है कि आपसे प्रेरणा पाए हुए आपके भले लोगोंने इसके लिए ईमानदारीसे कोशिश जरूर की।

"हम आशा रखें कि हम आपके इस संदेशके लायक साबित होंगे और अपने यहां उसका पूरा-पूरा उपयोग करेंगे।

"यह सच है कि यहांके बहुत थोड़े लोग उसके सच्चे अर्थको समझते हैं, लेकिन उसके लिए वातावरण यहां तैयार है।

"हम दिलमें हिम्मत रखकर और भगवानमें भरोसा रखकर काम करें!

"२७ जुलाई, १९४७के 'हरिजन' में छपा आपका लेख, जिसका मैंने इस खतके शुरूमें जिक्र किया है, एडमंडद्वारा किया तरजुमा अगले 'एसोर'में छापा जा रहा है। (सच पूछा जाय तो यह पूरा अंक ही हिंदुस्तानके बारेमें है।)

"मुझे खुशी है कि 'एसोर'के पाठकोंको एक बार फिर आपका वह दृष्टिकोण जाननेको मिलेगा, जिसपर आपने जोर दिया है। एक बार फिर उनका ध्यान मंद विरोध और अहिंसाके बुनियादी भेदकी तरफ तत्परतासे खिंचेगा।

"इसके बारेमें मैं जितना सोचती हूं, उतना ही मेरा यह पक्का विश्वास होता जाता है कि लोग इस भेदको नहीं समझते—नहीं समझ सकते। वे मंद विरोधका इस्तेमाल करते हैं, पर कामयाबी न मिलनेपर निराश हो जाते हैं, हालांकि वे अपनी कोशिशमें पूरे ईमानदार रहते होंगे।

"अक्सर हकीकत यह होती है कि लोग अनजानमें अपने आपसे झूठ बोलते हैं।

"इसलिए पिछले कुछ दिनोंसे मैं मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी थोड़ी जानकारी पानेकी कोशिश कर रही हूं। पहले लोग कहा करते थे कि शैतान हमारे दिलमें बैठकर हमें बुरे रास्ते ले जानेका जो खेल खेला करता

है, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

"आजकल लोग सचाईतक पहुंचनेके लिए ज्यादा वैज्ञानिक तरीके चाहते हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी विद्या दिमागी बीमारियोंके रोगियोंको अच्छा करनेका उपाय तो है ही। साथ ही, वह मामूली लोगोंकी मानसिक उलझनोंको भी दूर करनेमें मददगार हो सकती है। इस तरह लोग ज्यादा जाग्रत बनते हैं और यह जागृति, ईमानदारीसे कोशिश करनेपर उन्हें अहिंसाका सच्चा उपयोग करने लायक बनाती है।"

मैं देखता हूं कि आप मंद विरोध और अहिंसक विरोधका बुनियादी फर्क समझ गई हैं। विरोध दोनों ही रूपोंमें है, मगर जब आपका विरोध मंद विरोध होता है तब विरोध करनेवालेकी कमजोरीके अर्थमें आपको उसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। यूरोपने नाजारेथके ईशुके बहादुरी, हिम्मत और पूरी बुद्धिमानीसे किए हुए विरोधको मंद विरोध समझनेकी गलती की, जैसे वह किसी कमजोरका विरोध हो। जब मैंने पहली बार न्यू टेस्टामेंट पढ़ी तभी चार गॉस्पेलोंमें बयान किए गए ईशुके चरित्रके बारेमें कोई निष्क्रियता, कोई कमजोरी मुझे नहीं मालूम पड़ी। और जब मैंने टॉल्सटॉयकी 'हार्मनी ऑव दी गॉस्पेल्स' नामकी किताब और उनकी इस विषयसे संबंध रखनेवाली दूसरी किताबें पढ़ीं तब उसका मतलब और ज्यादा साफ हो गया। क्या ईशुको मंद विरोध करनेवाला समझनेकी गलती करनेके लिए पश्चिमको बहुत बड़ी कीमत नहीं चुकानी पड़ी है? सारे ईसाई देश उन महायुद्धोंके लिए जिम्मेदार रहे हैं, जिन्होंने ओल्ड टेस्टामेंटमें बयान किए गए और दूसरे ऐतिहासिक और अर्धऐतिहासिक महान् रेकार्डोंपर

धब्बा लगाया है। मैं जानता हूं कि मेरी बातमें कुछ गलती हो सकती है, क्योंकि नए और पुराने दोनों तरहके इतिहासकी मेरी जानकारी बहुत थोड़ी है।

अपने निजी अनुभवके बारेमें मैं कहूंगा कि बेशक हमको मंद विरोधके जरिए राजनैतिक आजादी मिली, जिसपर आप और आपके पति जैसे पश्चिमके शांतिपसंद लोग इतने उत्साहित हैं। मगर हमने, या कहिए कि मैंने मंद विरोधको अहिंसक विरोध मान लेनेकी जो भयंकर भूल की, उसकी भारी कीमत हम रोजाना चुका रहे हैं। अगर मैंने यह गलती न की होती तो हमें एक कमजोर भाईके हाथों दूसरे कमजोर भाईके बिना सोचे-बिचारे वहशियाना ढंगसे मारे जानेका शर्मनाक दृश्य न देखना पड़ता।

मैं सिर्फ यही उम्मीद और प्रार्थना करता हूं और यहांके व दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें रहनेवाले दोस्तोंसे चाहता हूं कि वे भी मेरे साथ यह उम्मीद और प्रार्थना करें कि यह खूनकी होली जल्द खतम होगी और उसमेंसे—शायद अनिवार्य खून-खराबीमेंसे—निकलकर एक नया और मजबूत हिंदुस्तान ऊपर उठेगा। वह पश्चिमकी सारी भयंकरताओंकी नीचतासे नकल करनेवाला लड़ाई-पसंद हिंदुस्तान नहीं होगा। वह पश्चिमकी सारी अच्छी बातोंको सीखनेवाला और एशिया व अफ्रीका ही नहीं, बल्कि सारी दुःखी दुनियाका आशाकेंद्र बननेवाला हिंदुस्तान होगा।

मुझे मानना चाहिए कि यह दुराशामात्र है, क्योंकि आज हम फौजमें और जिस्मानी ताकतको व्यक्त करनेवाली सारी

चीजोंमें पक्का विश्वास रखने लगे हैं। हमारे राजनीतिज्ञ अंग्रेजी हुकूमतमें हथियारोंपर किए जानेवाले भारी खर्चके खिलाफ दो पीढ़ियोंतक आवाज उठाते रहे हैं। मगर अब चूंकि राजनैतिक गुलामीसे हमें छुटकारा मिल गया है, हमारा फौजी खर्च बढ़ गया है, और भय है कि वह और ज्यादा बढ़ेगा। और इसपर हमें अभिमान है ! इसके खिलाफ हमारी धारासभाओंमें एक भी आवाज नहीं उठी है। फिर भी मुझे और बहुतसे दूसरे लोगोंको उम्मीद है कि इस पागलपन और पश्चिमके भड़कीलेपनकी झूठी नकल करनेके बावजूद हिंदुस्तान इस मौतके मुंहसे बच जायगा और सन् १९१५ से लगातार ३२ सालतक अहिंसाकी तालीम लेनेके बाद उसे जिस नैतिक ऊंचाईपर पहुंचना चाहिए, वहां पहुंच जायगा।

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६२ :

मालिककी बराबरी किस तरह करोगे ?

मजदूर-दिनके लिए आपने मेरा संदेश मांगा है। मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मजदूरोंने अगर अहिंसाका पाठ पूरी तरहसे समझा हो तो उनमें हिंदू-मुसलमानका भेदभाव नहीं होना चाहिए। हिंदुओंमें छूआछूतकी गंधतक न हो। मजदूरोंमें भेदभाव किस बातका ? मजदूरको अगर मालिककी

बराबरी करनी हो, तो उसे मिलको अपनी मिल्कियत समझकर उसकी सार-संभाल करनी चाहिए। अन्यायका विरोध कैसे किया जाय, यह बात तो अहमदाबादके मजदूर सीख गए हैं। मगर वे मालिकके साथ मिलोंके साझीदार बनें, उससे पहले उन्हें दूसरे बहुतसे पाठ सीखने हैं। क्या यह बात वे जानते हैं? वे याद करें और आगे बढ़ें।[१]

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६३ :

संकटका समझदारीभरा उपयोग

"आप शरणार्थियोंके बारेमें उतना ही जानते हैं, जितना दूसरा कोई जानता है। उनके दुःख-दर्दकी कहानियां दिलको तोड़ देनेवाली हैं। कुछ ही हफ्तों पहले वे लोग खुशहाल थे, लेकिन आज कंगाल हो गए हैं। डॉक्टरीका धंधा करनेवाले लोग अपने साथ उस धंधेका कोई सामान पाकिस्तानसे नहीं ला सके हैं। चीर-फाड़ वगैराके औजार और डाक्टरीकी किताबें भी उनसे छीन ली गई हैं। निजी माल-असबाब और पैसा-टका सब वहीं छोड़ना पड़ा। वे सच्चे मानोंमें गरीब, निराश्रित और बेरोजगार हो गए हैं। वे नहीं जानते कि वे क्या करें।

"आपने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणोंमें हमेशा यह कहा है कि आजके

---

[१] 'मजदूर-दिन' के बारेमें गांधीजीका अहमदाबादके मजूर-महाजन-को श्रीअनसूयाबहनके मार्फत भेजा गया संदेश।

संकटका समय हमारी कसौटीका समय है। उसमें हमारा जीतना या हारना अपने आपपर निर्भर करता है। हालांकि हमारी पूरी हमदर्दी शरणार्थियोंके साथ है, फिर भी यह कबूल करना पड़ेगा कि उनमें सूझ-बूझकी कुछ कमी है। वे खुद अपनी रोजी कमानेका कोई उपाय नहीं खोजते। इससे उनकी तकलीफें और ज्यादा बढ़ गई हैं। ज्यादातर डॉक्टरों और वैद्योंकी—जो पाकिस्तानके अलग-अलग शहरोंमें अपनी खूब पैसा देनेवाली प्रैक्टिस छोड़कर यूनियनमें आए हैं—सिर्फ एक ही मांग है कि उन्हें दिल्लीकी किसी अच्छी बस्तीमें दूकान या मकान दे दिया जाय। जिन मर्दों और औरतोंको वहांसे नौकरी छोड़कर आना पड़ा है, वे चाहते हैं कि केंद्र या सूबेकी कोई सरकार उन्हें फिर नौकरी दे दे। लेकिन आजकी हालतमें ऐसे हजारों लोगोंमेंसे थोड़े ही लोग मनचाही जगह या नौकरी पानेकी उम्मीद रख सकते हैं। अगर सब डॉक्टरों या वैद्योंको मनकी जगह मिल जाय तो भी वे एक ही शहरमें शायद अपनी प्रैक्टिस नहीं जमा सकेंगे। जिन लोगोंको बदकिस्मतीसे दूकान या मकान नहीं मिलते, वे सोचते हैं कि उनके साथ न्याय नहीं किया जाता। मुझे लगता है कि आप अपनी कलमसे इन लोगोंको कोई सलाह दें तो इन्हें सही रास्ता दिखाई देगा।

"आज हमारे देशको हर मैदानमें सेवाकी जरूरत है, खास कर डॉक्टरी धंधेकी हर शाखाके सदस्योंको तो जनताकी सेवामें खो जाना कठिन नहीं मालूम होना चाहिए, बशर्तेकि वे छोटे शहरों या गांवोंमें जमनेके लिए तैयार हों। वहां रहकर वे लोगोंको सिर्फ डॉक्टरी मदद ही नहीं दे सकेंगे, बल्कि लोगोंको बीमारियोंसे बचनेके लिए सफ़ाई और नियमसे रहना भी सिखा सकेंगे। अगर हमारी सरकारें ग्राम-सुधारके कार्यक्रमों-को सचमुच अमलमें लाना चाहती हैं तो मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि सारे डॉक्टर, सर्जन, नर्स और शिक्षक सीधे सरकारी नौकरीमें

क्यों नहीं लिए जा सकते। किसी सब-डिवीजन या गांवमें जम जानेसे भी एक अरसेके बाद खानगी प्रैक्टिसमें जरूरतसे ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। हां, ऐसे हर मर्द या औरतको शहरी जीवनके सुख-सुभीते छोड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। शायद इनसे उन्हें हमेशा फायदा भी नहीं हुआ है। अगर वे चतुर, ईमानदार और हमदर्द हों तो राजपर आजकी तरह बोझ बननेके बजाय निश्चित रूपसे उसे फायदा पहुंचा सकते हैं। तब हमारा आजका संकट वरदान बन जायगा।"

यह खत एक ऐसे व्यक्तिने लिखा है, जो इस संकटके बारेमें सब कुछ जानता है। इसमें जरा भी शक नहीं कि अगर इस भयानक मुसीबतके शिकार बने लोग और जनता—जिसके बीच उन्हें कुछ समयके लिए रहना पड़ रहा है—सही बरताव करें तो यह संकट वरदान वन सकता है। मुझे कोई शक नहीं कि इस संकटमें डॉक्टरों, वकीलों, वैद्यों, हाकिमों, नर्सों, व्यापारियों और बैंकरों जैसे खास तालीम पाए हुए सब लोगोंको दूसरोंके साथ सुख-दुःख उठाकर पूरे सहकारसे छावनी-का एक-सा जीवन विताना चाहिए। उन्हें अपनेको दानपर जीनेवाले लाचार स्त्री-पुरुष नहीं, बल्कि होशियार सूझ-बूझ-वाले और आजाद स्त्री-पुरुष महसूस करना चाहिए, अपने दुःखोंकी ज्यादा परवाह नहीं करनी चाहिए और खुश रहकर ऐसे जीवनकी आशा करनी चाहिए जो उनके दुःखोंसे ज्यादा समृद्ध और ऊंचा बना है, जिसका भविष्य उजला और शान-दार है और जो उन लोगोंद्वारा नकल करने लायक है जिनके बीच छावनीका जीवन विताया जाता है।

जब डॉक्टर, नर्स, वकील, व्यापारी वगैरह लोग निःस्वार्थ

और मिली-जुली सामाजिक जिंदगीके आदी हो जायंगे और जब वे इन छावनियोंमेंसे बाहर भेजे जा सकेंगे तब वे गांवोंमें या शहरोंमें फैल जायंगे और जहां कहीं रहेंगे वहां अपने जीवनकी खुशबू फैलाएंगे।

नई दिल्ली, ३०-११-'४७

: ६४ :

अहिंसाकी मर्यादा

एक सज्जनने मुझे खत लिखा है। उसका सार इस तरह है:

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। दोस्तोंके बीचकी समाजी अहिंसा भी समझमें आ सकती है; लेकिन आप तो कहते हैं कि दुश्मनोंके सामने भी अहिंसाका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह तो आकाशके फूल-सी असंभव बात मालूम होती है। मेहरबानी करके आप यह हठ छोड़ दें तो अच्छा हो। अगर आप अपनी हठ नहीं छोड़ेंगे तो आजतककी कमाई हुई आबरू खो देंगे। आप महात्मा माने जाते हैं, इसलिए समाजके बहुतसे लोग आपके रास्ते चलकर बहुत दुःखी और पामाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे। इससे समाजको नुकसान हो रहा है।"

जिस अहिंसाकी हद एक व्यक्तितक है, वह समाजके कामकी नहीं। मनुष्य समाजी जीव है, इसलिए उसकी शक्तियां

होता है। फिर भी हम यह क्यों नहीं देख सकते कि अगर यह दुनिया वैरसे भरी होती तो इसका कभीका अंत हो गया होता? आखिरमें दुनियामें प्रेम ही बढ़ता है। उससे दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी बात सच है कि अहिंसाकी तालीम लेनी होती है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपरको होती है, इसलिए उसकी ऊंची-से-ऊंची चोटीतक पहुंचनेमें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नीचे उतरनेमें मेहनत नहीं पड़ती। हम सब इस बारेमें अशिक्षित हैं। इसलिए जीवनमें मारकाट, गाली-गलौज ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभवसे मंजे हुए आदमीको ही चुनती है।

नई दिल्ली, ८-१२-'४७

: ६५ :

दुःखीका धर्म

सिंधमें जीना बहुत भारी मालूम होनेसे सिंध छोड़कर आए हुए एक सिंधी भाई लिखते हैं :

"इस बड़ी मुसीबतके वक्त जब पश्चिमी पाकिस्तानसे हमारे हजारों भाई-बहन अपने पुश्तैनी घरबार छोड़कर इस हिस्सेमें आ रहे हैं तब दुःखकी बात यह है कि कई हिंदू संकुचित प्रांतीयता जतला रहे हैं। आपद्धर्म समझकर जो लोग बेहद दुःखकी वजहसे भाग निकले हैं उनकी तरफ सबको कम-से-कम मामूली दया तो जतलानी ही चाहिए। आपने हमको

ऊपर उठता है, दूसरोंके दोष निकालनेसे नीचे गिरता है। इसके सिवा दुखी लोगोंको सहयोग जीवनकी कला और उसमें रहनेवाले गुणोंको समझ लेना चाहिए। यह सीखते हुए वे देखेंगे कि सहयोगका घेरा वड़ा होता जाता है, जिससे उसमें सारे इन्सान समा जाते हैं। अगर दुखी लोग इतना करना सीख जायं तो उनमेंसे कोई अपने आपको अकेला न माने। तव, सभी, चाहे वे किसी प्रांतके हों, अपनेको एक मानेंगे और सुख खोजनेके वदले मनुष्यमात्रके कल्याणमें ही अपना कल्याण देखेंगे। इसका मतलव कोई यह न करे कि आखिरमें सवको एक ही जगह रहना होगा। यह हमेशा असंभव ही रहेगा और जव लाखोंका सवाल है तव तो विलकुल ही असंभव है। मगर इसका मतलव इतना जरूर है कि हरएक अपनेको समुद्रमें एक वूंदके समान समझकर दूसरेके साथ संवंध रखे, फिर भले ही दुःख आ पड़नेसे पहले सवके दरजे अलग-अलग रहे हों—किसी-का नीचा रहा हो, किसीका ऊंचा, और सभी अलग-अलग प्रांतोंके हों, और फिर कोई ऐसा तो कह ही नहीं सकता कि मुझे तो फलां जगहपर ही रहना है। तव किसीको न तो अपने दिलमें कोई शिकायत रहेगी और न कोई प्रकट रूपसे शिकायत करेगा। तव मुसलमानोंके घर चाहे खाली हों, चाहे भरे हुए, मगर कोई उनपर अपनी मैली नजर नहीं डालेगा। ऐसे खाली मकानोंका क्या किया जाय, इसका फैसला करनेका काम सरकारका है। दुखियोंको एक ही फिकर करनी है कि उन सवको साथ रहना है और वहुतसे होते हुए भी ऐसे वरतना है, मानों सव एक ही हों। अगर ऊपर वतलाए हुए विचारोंपर अमल होगा और

वह फैलेगा तो दुखियों या शरणार्थियोंको रखनेका सवाल बिलकुल हल्का हो जायगा और उनके बारेमें जो डर है, वह दूर हो जायगा।

ऐसी अच्छी व्यवस्थामें वे अपंग या लाचार बनकर नहीं रहेंगे। ऐसे सभी दुखी, उनको दिया गया काम करेंगे और सभीके खाने, पहनने और रहनेका अच्छा इंतजाम हो जायगा। ऐसा करनेसे वे स्वावलंबी बनेंगे। औरत-मर्द सभी एक दूसरेको बराबर मानेंगे। कई काम तो सभी करेंगे, जैसे कि पाखाने साफ करना, कूड़ा-करकट निकालना वगैरह। किसी कामको ऊंचा और किसीको नीचा नहीं माना जायगा। ऐसे समाजमें कोई आवारा, आलसी या निकम्मा नहीं रहेगा। ऐसी जिंदगी शहरी जिंदगीसे बहुत ऊंची मानी जायगी। शहरी जीवनमें एक तरफ महल और दूसरी तरफ गंदे झोंपड़े होते हैं, इन दोनोंमेंसे कौन-सा ज्यादा घृणा पैदा करता है, यह कहना मुश्किल है।

नई दिल्ली, ९–१२–'४७

: ६६ :

मेव लोग क्या करें ?

आज मेरी बातका प्रभाव नहीं रहा, जो पहले था। एक जमाना था जब मेरी हर बातपर अमल किया जाता था। अगर मेरे कहनेमें पहलेकी ताकत और प्रभाव होता तो आज

एक भी मुसलमानको हिंदुस्तानी संघ छोड़कर पाकिस्तान जानेकी जरूरत न पड़ती, न किसी हिंदू या सिक्खको पाकिस्तान-में अपना घरवार छोड़कर हिंदुस्तानी संघमें आसरा खोजनेकी जरूरत होती। हिंदुस्तान या पाकिस्तानमें जो कुछ हुआ—भयानक खूंरेजी, आग, लूटपाट, औरतोंको भगाना, जवरदस्ती लोगोंका धर्म-परिवर्तन करना और इससे भी वुरी जो वातें हमने देखी हैं—वह सव मेरी रायमें वहुत वड़ा जंगलीपन है। यह सच है कि पहले भी ऐसी वातें हुई हैं, लेकिन तव इतने वड़े पैमानेपर सांप्रदायिक फर्क नहीं पैदा हुआ था। ऐसी वर्वरता-भरी घटनाओंकी कहानियोंसे मेरा दिल रंजसे भर जाता है और सिर शर्मसे गड़ जाता है। इससे भी ज्यादा शर्मनाक वात मंदिरों, मसजिदों और गुरुद्वारोंको तोड़ने और विगाड़ने-की है। अगर इस तरहके पागलपनको रोका नहीं गया तो वह दोनों जातियोंका सर्वनाश कर देगा। जवतक देशमें इस तरहके पागलपनका राज है तवतक हम आजादीसे कोसों दूर रहेंगे।

लेकिन इसका इलाज क्या है? संगीनोंकी ताकतमें मेरा विश्वास नहीं है। मैं तो इसके इलाजके रूपमें आपको अहिंसाका हथियार ही दे सकता हूं। वह हर तरहके संकटका सामना कर सकता है और अजेय है। हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म वगैरह सारे वड़े धर्मोंमें अहिंसाकी वही सीख भरी है; लेकिन आज धर्मके पुजारियोंने उसे सिर्फ किताबी उसूल वना रखा है, व्यवहारमें वे सव जंगलके कानूनको ही मानते हैं। संभव है, आज मेरी आवाज अरण्यरोदन-जैसी सावित हो, लेकिन मैं तो आपको अहिंसाके संदेशके सिवा दूसरा कोई संदेश
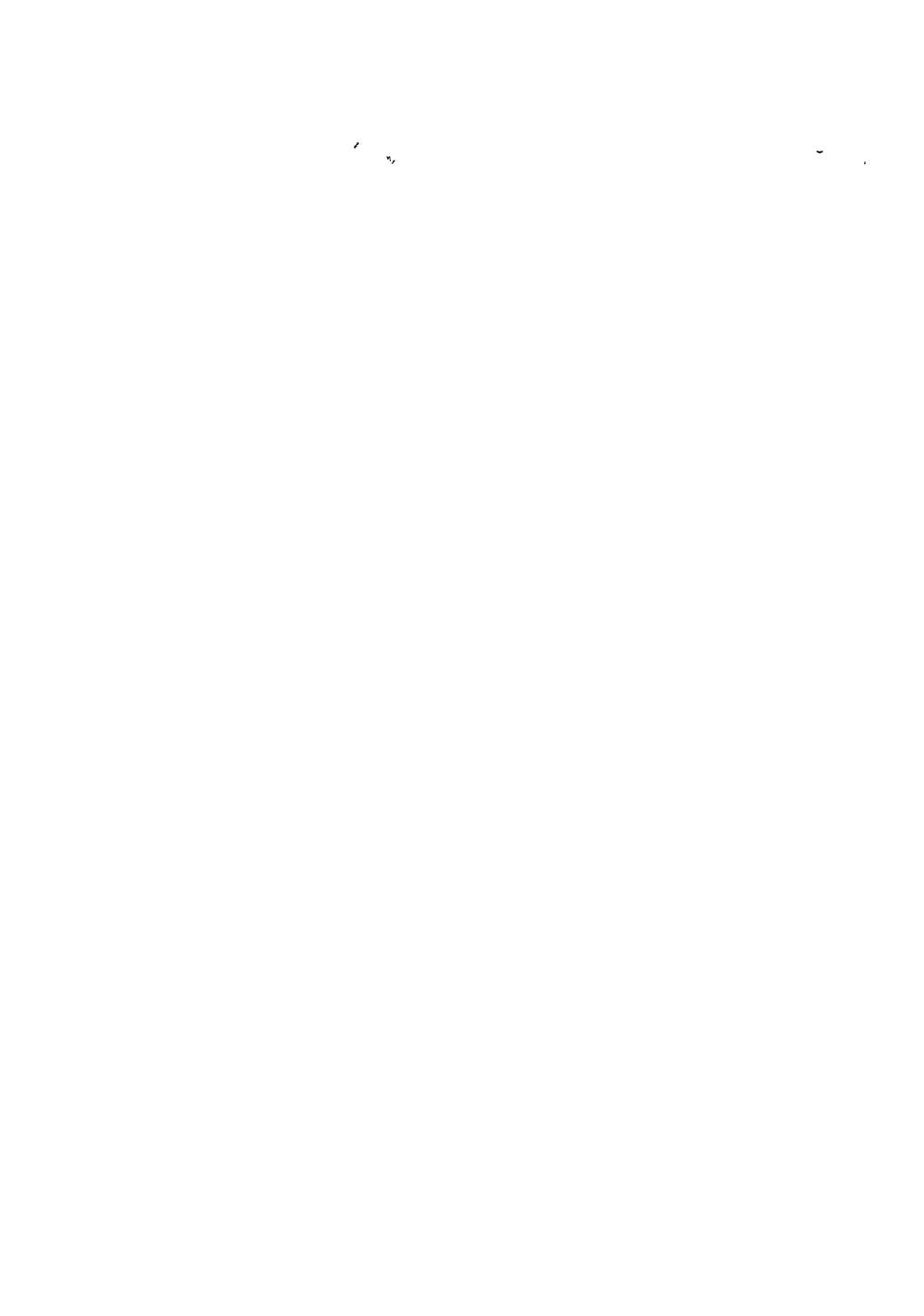
जिन्हें अपने घरोंसे निकाला गया है वे सव अपने-अपने घर लौटेंगे तथा पूरी शांति और सलामतीके वातावरणमें पहलेकी तरह अपने धंधे चालू करेंगे । तव मेरा दिल खुशीसे नाचने लगेगा । जवतक मैं जिंदा रहूंगा तवतक यह आशा नहीं छोड़ूंगा; लेकिन मैं कवूल करता हूं कि आजकी हालतोंमें यह नहीं हो सकता । मुझे इस वातका भरोसा है कि हमारी यूनियन सरकार इस वारेमें अपना फर्ज अदा करनेमें ढिलाई नहीं दिखाएगी और रियासतोंको यूनियन सरकारकी सलाह माननी पड़ेगी । यूनियनमें शामिल हो जानेसे रियासतोंके शासकोंको अपनी प्रजाको दवाने और कुचलनेकी आजादी नहीं मिल जाती । अगर राजाओंको अपना दरजा कायम रखना है तो उन्हें अपनी प्रजाके ट्रस्टी और सच्चे सेवक वनना होगा ।

अंतमें मैं मेव भाइयोंसे एक वात कहना चाहता हूं । मुझसे यह कहा गया है कि मेव लोग करीव-करीव जरायमपेशा जातियों-की तरह हैं । अगर यह वात सही हो तो आप लोगोंको अपने आपको सुधारनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिए । अपने सुधारका काम आपको दूसरोंपर नहीं छोड़ना चाहिए । मुझे आशा है कि आप लोग मेरी इस सलाहपर नाराज नहीं होंगे । जिस अच्छी भावनासे मैंने आपको यह सलाह दी है, उसे आप उसी भावनासे ग्रहण करेंगे । यूनियनकी सरकारसे मैं यह कहूंगा कि अगर मेवोंके वारेमें यह इलजाम सही हो तो भी, इस दलीलपर उन्हें निकालकर पाकिस्तान नहीं भेजा जा सकता । मेव लोग हिंदुस्तानी संघकी प्रजा हैं । इसलिए उसका यह फर्ज है कि

: ६८ :

मिल जानेका उसूल

कहा जाता है कि दक्षिण यूनियनकी कुछ देशी रियासतों-के लोगोंने यह जबरदस्त इच्छा प्रकट की है कि उनके राज-घरानोंको खतम कर दिया जाय और रियासतोंको हिंदुस्तानी संघमें मिला लिया जाय। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमें ब्रिटिश हिंदु-स्तान अलग था और रियासतें या रियासती हिंदुस्तान अलग। अब इस नई तजवीजका मतलब यह लिया जाता है कि रियासतें उस जमानेके ब्रिटिश हिंदुस्तानमें मिल जायं।

जो समाज अहिंसापर कायम हो, उसमें किसी आदमीको धीरज खोकर दूसरेका नाश नहीं करना चाहिए; क्योंकि अगर हर बुराई करनेवाला आदमी अपनेको सुधारेगा नहीं तो खुद अपना नाश जरूर कर लेगा। बुराई कभी अपने पैरोंपर खड़ी रह ही नहीं सकती। इसीलिए कांग्रेसकी नीति हमेशा देशी राजाओं और उनके राजको सुधारनेकी रही है, उन्हें खतम करनेकी नहीं। कांग्रेस, राजाओंको सदा यही समझाती रही है कि वे अपनी प्रजाके सचमुच ट्रस्टी और सेवक बन जायं। इस नीतिके अनुसार कांग्रेस सरकारने राजाओंकी हुकूमतको खतम करने और उनकी रियासतोंको पूरी तरह अपने सूबोंमें मिला लेनेकी तजवीज करनेके बजाय रियासतवालोंको यही समझानेकी कोशिश की है कि वे यूनियनसे अपना नाता जोड़ लें। इसमें कांग्रेस सरकारको बड़े दरजेतक कामयाबी भी मिली है। इसलिए किसी रियासतका पूरी तरह किसी सूबेमें

मिल जाना या बाकी हिंदुस्तानमें लीन हो जाना दो ही सूरतोंमें हो सकता है। एक सूरत तो यह है कि किसी राजाके राजमें अंधेर साफ चमकने लगे और उसका कोई इलाज न रह जाय। ऐसी हालतमें वहांके लोगोंको हक होगा, उनका धर्म भी होगा कि वे पासके सूबोंमें बिलकुल मिल जानेकी कोशिश करें। दूसरी सूरत यह हो सकती है कि राजा और प्रजा दोनों मिलकर इसका फैसला करें। किसी-किसीने यह भी कहा है कि जबतक सब रियासतें या ज्यादातर रियासतें इस तरह अपनेको मिटा देनेको तैयार न हों तबतक किसी अकेली रियासत या वहांके लोगोंको—चाहे वह बड़ी रियासत हो या छोटी—ऐसा नहीं करना चाहिए। लेकिन मेरा यह खयाल नहीं है। यह नहीं हो सकता कि जबतक दूसरी रियासतोंमें भी वैसा ही अंधेर शुरू न हो जाय तबतक किसी एक रियासतका अंधेर चलता ही रहे और खतम न किया जा सके। इसी तरह अगर कोई राजा खुद अपने राजके अधिकारको खतम करना चाहे तो उसे जबरदस्ती यह नहीं कहा जा सकता कि जबतक और सब इसके लिए तैयार न हो जायं तबतक तुम भी रुके रहो। आखिर तो हिंद सरकार हर रियासतके मामलेको अलग-अलग, जरूरत या हालतके मुताबिक, तय करेगी।

नई दिल्ली, १३-१२-'४७

: ६६ :

अब भी कातें !

एक भाईने मुझे लिखा है :

"मैं और मेरे घरके लोग बराबर चरखा कातते रहे हैं और खादी पहनते रहे हैं। अब आजादी मिल जानेके बाद भी क्या आप इसपर जोर देते हैं कि हम चरखा कातते रहें और खादी पहनते रहें ?"

यह एक अजीब सवाल है; पर बहुतसे लोगोंकी यही हालत है। इससे साफ जाहिर होता है कि इस तरहके लोगोंने चरखा कातना और खादी पहनना इसलिए शुरू किया था कि उनके खयालमें यह आजादी हासिल करनेका एक जरिया था। उनका दिल चरखे या खादीमें नहीं था। यह भाई भूल जाते हैं कि आजादीका मतलब सिर्फ विदेशियोंके बोझका हमारे कंधोंपरसे हट जाना ही नहीं था। यह और बात है कि आजादीके लिए सबसे पहले इस बोझका हटना जरूरी था। खादीका मतलब है ऐसा रहन-सहन, जिसकी नींव अहिंसापर हो। यही मतलब खादीका, आजादीके पहले था, यही आज भी है। ठीक हो या गलत, मेरी यही राय है कि खादी और अहिंसाके करीब-करीब लोप हो जानेसे यह साबित होता है कि इन तमाम बरसोंमें हम खादीके असली और सबसे बड़े मतलबको कभी नहीं समझ पाए। इसलिए आज हमें जगह-जगह अराजकता और भाई-भाईकी लड़ाई देखनी पड़ रही है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि अगर हमें वह आजादी हासिल करनी है, जिसे हिंदुस्तानके करोड़ों गांववाले अपने

आप समझने और महसूस करने लगें तो चरखा कातना और खादी पहनना आज पहलेसे भी ज्यादा जरूरी है। वही इस धरतीपर ईश्वरका राज्य या रामराज्य कहा जायगा।' खादी-के जरिए हम यह कोशिश कर रहे थे कि बिजली या भापसे चलनेवाली मशीनके, आदमीपर चढ़ बैठनेके बजाय, आदमी मशीनके ऊपर रहे। खादीके जरिए हम कोशिश कर रहे थे कि आज आदमी-आदमीके बीच जो गरीब-अमीर और छोटे-बड़ेका जबरदस्त फर्क दिखाई दे रहा है, उसकी जगह आदमी-आदमीमें और सब मर्दों व औरतोंमें बराबरी कायम हो। हम यह कोशिश कर रहे थे कि बजाय इसके कि पूंजीपति मजदूरोंपर हावी होकर रहें और उनपर बेजा शान जमावें, मजदूर पूंजीपतियोंपर हावी बनकर रहें। इसलिए पिछले तीस बरसोंमें हमने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया, वह अगर उलटी चाल नहीं थी तो हमें पहलेसे भी ज्यादा जोरोंसे और कहीं ज्यादा समझके साथ चरखेकी कताई और उसके साथके सब कामोंको जारी रखना चाहिए।

नई दिल्ली, १३-१२-'४७

: ७० :

प्रांतीय गवर्नर कौन हो?

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं:

"एक सवाल है, जो मेरे ख्यालसे महत्त्वका है और जिसके बा

में आपकी राय जानना चाहता हूं। हिंदका जो नया विधान बनाया जा रहा है उसमें प्रांतोंके गवर्नर चुननेके नियम रखे गए हैं। प्रांतका गवर्नर उस सूबेके सभी बालिगोंके मतसे चुना जायगा। इसलिए यह साफ जाहिर है कि जिसे कांग्रेसका पार्लमेंटरी बोर्ड चुनेगा, उसे ही आम तौरसे प्रांतकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रांतका प्रधान मंत्री भी कांग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रांतका गवर्नर ऐसा ही होना चाहिए, जो उस सूबेकी पार्टीबंदीसे अलग रहे; लेकिन अगर प्रांतका गवर्नर आम तौरसे कांग्रेसी होगा और उसी प्रांतका होगा तो वह कांग्रेसदलकी पार्टीबंदियोंसे अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह कांग्रेस प्रधान मंत्रीके इशारोंपर चलेगा या फिर गवर्नर और प्रधानमंत्रीके बीच कुछ-न-कुछ खींचातानी रहेगी।

"मेरे ख्यालसे तो प्रांतोंमें अब गवर्नरकी जरूरत ही नहीं है। प्रधानमंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५००) रु० महीना गवर्नरकी तनखाहपर फजूल ही क्यों खर्च किया जाय ? फिर भी अगर प्रांतोंमें गवर्नर रखने ही हैं तो वे उसी प्रांतके नहीं होने चाहिए। बालिग मतसे उन्हें चुननेमें भी बेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि यूनियनका अध्यक्ष हर प्रांतमें दूसरे किसी प्रांतके ऐसे इज्जतदार कांग्रेसी सज्जनको भेजे, जो उस प्रांतकी पार्टीबंदीसे अलग रहकर वहांके सार्वजनिक और राजनैतिक जीवनको ऊंचा उठा सके। आज जो प्रांतोंके गवर्नर केंद्रीय सरकारने नियुक्त किए हैं, वे करीब-करीब इन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार चुने गए हैं, ऐसा लगता है। और इसलिए प्रांतोंका राजनैतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर आजाद हिंदके आगेके विधानमें उसी प्रांतका आदमी बालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया तो, मुझे डर है कि प्रांतोंका राजनैतिक जीवन ऊंचा" नहीं रह सकेगा।

"उस विधानमें गांव-पंचायतोंका और राजनैतिक सत्ताको छोटी इकाइयोंमें बांट देनेका किसी तरहका जिक्र नहीं किया गया है; लेकिन मेरा उद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी जरा भी टीका करना नहीं है। जो चीज मुझे बहुत खटकती है, उसपर मैं आपकी राय 'हरिजन'में चाहता हूं।"

आचार्यजीने प्रांतीय गवर्नरोंके बारेमें जो कहा है, उसके समर्थनमें कहनेको तो बहुत है, लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद्की सब कार्रवाई नहीं देख सका हूं। मुझे इतना भी मालूम नहीं है कि गवर्नरके चुनावकी तजवीज किस तरह पैदा हुई। इसको न जानते हुए भी मुझे आचार्यजीकी दलील मजबूत लगती है। लोगोंकी तिजोरीकी कौड़ी-कौड़ीको बचाना मुझे बहुत पसंद होते हुए भी प्रधान-मंत्रीको ही गवर्नर मान लेकर दूसरा कोई गवर्नर न रखनेकी इनकी बात मुझे नहीं जचती। किफायतके खयालसे प्रांतमेंसे गवर्नरको ही उड़ा देना मुझे गलत मालूम होता है गवर्नरोंको रोजानाके कारबारमें दखल देनेका बहुत अधिकार देना ठीक नहीं है। वैसे ही उनको सिर्फ शोभाका पुतला बना देना भी ठीक नहीं होगा। वजीरोंके कामको दुरुस्त करनेका अधिकार उन्हें होना चाहिए। सूबेकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे सूबेका कारबार ठीक तरह देख सकेंगे और वजीरोंको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने-अपने सूबोंकी नीतिके रक्षक होने चाहिए। आचार्यजी जैसा बताते हैं, अगर विधानमें गांव-पंचायत और सत्ताको छोटी इकाइयोंमें बांटने (विकेंद्रीकरण)के बारेमें

इशारातक नहीं है तो यह गलती दूर होनी चाहिए। अगर आम राय ही हमारे लिए सब कुछ है तो पंचोंका अधिकार जितना ज्यादा हो, उतना लोगोंके लिए अच्छा है। पंचोंकी कार्रवाई और असर फायदेमंद हों, इसके लिए लोगोंकी सही तालीम बहुत आगे बढ़नी चाहिए। यह लोगोंकी फौजी ताकतकी बात नहीं है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। इसलिए मेरे मनमें तो तालीमसे नई तालीमका ही मतलब है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७१ :

उपवास क्यों ?

"जब कभी आपके सामने कोई जबरदस्त मुश्किल आ जाती है तो आप उपवास क्यों कर बैठते हैं ? आपके इस कामका असर हिंदुस्तानकी जनताकी जिंदगीपर क्या होता है ?"

इस तरहके सवाल मुझसे पहले भी किये गए हैं। पर शायद ठीक इन्हीं शब्दोंमें नहीं। इनका जवाब सीधा है। अहिंसाके पुजारीके पास यही आखिरी हथियार है। जब इन्सानी अक्ल काम नहीं करती तो अहिंसाका पुजारी उपवास करता है। उपवाससे प्रार्थनाकी तरफ तबियत ज्यादा तेजीसे जाती है। यानी उपवास एक रूहानी चीज है और उसका रुख ईश्वरकी तरफ होता है। इस तरहके कामका

असर जनताकी जिंदगीपर यह होता है कि अगर वह उपवास करनेंवालेको जानती है तो उसकी सोई हुई अंतरात्मा जाग उठती है। इसमें एक खतरा जरूर रहता है। संभव है, लोग अपने प्यारेकी जान बचानेके लिए उसके साथ गलत हमदर्दी दिखाकर अपनी मरजीके खिलाफ काम कर लें। इस खतरेका सामना तो करना ही पड़ता है। आदमीको अगर अपने किसी कामके बारेमें यह यकीन हो जाय कि वह ठीक है तो उसे उस कामके करनेसे नहीं रुकना चाहिए। इस तरहका उपवास अंदरकी आवाजके जवाबमें किया जाता है, इसलिए उसमें जल्दबाजीका डर कम होता है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७२ :

सत्यसे क्या भय ?

सत्य वचन कठोर लगता हो तब भी उसका परिणाम शुभ ही होता है। सत्य वचन कभी अप्रस्तुत नहीं हो सकता। जो अप्रस्तुत है वह सत्य नहीं। गाय किस रास्ते गई, यह बतानेका मेरा शाश्वत धर्म नहीं। इसलिए बहुत बार यह बताना अप्रस्तुत हो सकता है। हिंदुस्तानमें हिंदुओंद्वारा किए गए अपकृत्योंको डोंडी पीटकर बताना चाहिए। ऐसा करना अप्रस्तुत न होगा। उसे खुले तौरसे स्वीकार कर

लेनेमें ही हिंदूकी रक्षा है। ऐसा करनेसे पाकिस्तानके मुसलमानोंके अपकृत्योंकी जल्दी-से-जल्दी समाप्ति हो सकती है। अपनी गलतीको स्वीकार कर लेनेकी प्रवृत्ति मनुष्यको पवित्र करती है, उसे ऊंचा उठाती है। उसे दवा देना शरीरमें जहरको दवाकर उसका नाश कर देनेकी भांति होगा। इसलिए यह सर्वथा त्याज्य है।

नई दिल्ली, १४–१२–'४७

: ७३ :

मिश्र खाद

खाद दो तरहकी कही जा सकती है। एक तो रासायनिक और दूसरी जीवित। कोई पूछ सकता है कि खाद भी कभी जीवित होती है? इसका अर्थ इतना ही है कि यहांपर जीवित शब्द नए तरीकेसे इस्तेमाल किया गया है। अंग्रेजी शब्द 'ऑरगेनिक' का यह अनुवाद है। जीवित खाद, आदमी और जानवरोंके मल और उसमें घास-पत्ते वगैरह मिलावट या उनके विना तैयार होती है। वनस्पतिको हम निर्जीव नहीं मानते। लोहे वगैराको जड़ मानते हैं। इस तरहके मिश्रणसे वनी हुई खादको अंग्रेजीमें 'कम्पोस्ट' कहते हैं। मैंने कम्पोस्टकी जगह 'मिश्र' शब्द इस्तेमाल किया है। ऐसी खादको मैं सुनहरी खाद मानता हूं। ऐसी खादसे जमीनकी ताकत वनी रहती है। उसका शोपण नहीं होता, जब कि

है वैसी ही फसलकी है। इसमें दोप जमीनका नहीं, मनुष्यका है। आलस और अज्ञान नामके दो कीड़े हमको खा जाते हैं। मीराबहनने जो काम उठाया है, वह बहुत बड़ा है। उसमें सैकड़ों मीराबहनें खप सकती हैं। लोगोंमें इस कामके लिए उत्साह होना चाहिए, विभागके लोग जाग्रत होने चाहिए। करोड़ोंके करनेका काम थोड़ेसे सेवक-सेविकाओंसे नहीं हो सकेगा। इसमें तो सेवक-सेविकाओंकी फौज चाहिए।

क्या हिंदुस्तानकी ऐसी अच्छी किस्मत है? हिंदुस्तान यानी दोनों हिस्से। अगर दक्षिणका हिस्सा यह काम शुरू कर दे तो उत्तरके हिस्सेद्वारा भी उसे शुरू हुआ ही समझिए।

नई दिल्ली, २१-१२-'४७

: ७४ :

आरोग्यके नियम

श्री ब्रजलाल नेहरू मेरे-जैसे ही खब्ती हैं। उन्होंने अखबारोंमें एक पत्र लिखा है, जिसमें आरोग्य-मंत्री राजकुमारी अमृतकुंवरके इस कथनकी तारीफ की है कि हमारी बीमारियां अपने अज्ञान और लापरवाहीमेंसे पैदा होती हैं। उन्होंने यह सूचना की है कि आजतक आरोग्य-विभागका ध्यान अस्पताल वगैरह खोलनेपर ही रहा है। उसके बदले राज-

कुमारीने जिस अज्ञानका जिक्र किया है, उसे दूर करनेकी तरफ
इस विभागको ध्यान देना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाया
है कि इसके लिए एक नया विभाग खोलना चाहिए। परदेशी
हुकूमतकी यह एक बुरी आदत थी कि जो सुधार करना हो,
उसके लिए नया विभाग और नया खर्च खड़ा किया जाय।
लेकिन इस बुरी आदतकी नकल हम क्यों करें? बीमारियों-
का इलाज करनेके लिए अस्पताल भले रहें, लेकिन उनपर
इतना जोर क्या देना? घर बैठे आरोग्य कैसे संभाला जा
सकता है, इसकी तालीम देना आरोग्य-विभागका पहला
काम होना चाहिए। इसलिए आरोग्य-मंत्रीको यह समझना
चाहिए कि उसके नीचे जो डाक्टर और नौकर काम करते
हैं, उनका पहला फर्ज है जनताके आरोग्यकी रक्षा और उसकी
संभाल करना।

श्री ब्रजलाल नेहरूकी एक सूचना ध्यान देने लायक है।
वे लिखते हैं कि बीमारियोंके इलाजके बारेमें ढेरों किताबें
देखनेमें आती हैं, लेकिन कुदरती इलाज करनेवालोंके सिवा
डिग्रीवाले डॉक्टरोंने आरोग्यके नियमोंके बारेमें कोई किताब
लिखी हो, ऐसा कभी सुना नहीं गया। इसलिए श्री नेहरू
यह सूचना करते हैं कि आरोग्य-मंत्री मशहूर डॉक्टरोंसे ऐसी
किताब लिखवाएं। यह किताब लोगोंके समझने लायक भाषा
लिखी जाय तो जरूर उपयोगी साबित होगी। शर्त यही
कि ऐसी किताबमें तरह-तरहके टीके लगानेकी बात
होनी चाहिए। आरोग्यके नियम ऐसे होने चाहिए, जि
पालन डॉक्टर-वैद्योंकी मददके बिना घर बैठे हो सके।

न हो तो कुएंमेंसे निकलकर खाईमें गिरने-जैसी बात होना संभव है।

नई दिल्ली, २१-१२-'४७

: ७५ :

देहातोंमें संग्रहकी जरूरत

श्री वैकुंठभाई लिखते हैं :

"आजकलकी व्यापार-पद्धतिका परिणाम यह होता है कि देहातोंका अनाज परदेश चला जाता है। देशके बहुतसे हिस्सोंमें गांवोंमें स्थानिक संग्रह नहीं रहता। परिणाम स्वरूप मजदूर वर्गको कष्ट उठाना पड़ता है और चौमासेमें अनाजका भाव खूब बढ़ जाता है। ऐसी हालतमें यह अच्छा होगा कि गरीब प्रजाको बचानेके लिए देहातमें ही पंचके कब्जेमें किसी अच्छे गोदाममें काफी परिमाणमें अन्न इकट्ठा किया जाय और वहींसे जहां भेजना हो भेजा जाय। इस दृष्टिसे चार साल पहले श्री अच्युतराव पटवर्धन और मैंने एक योजना तैयार की थी। श्री कुमारप्पाने जो योजना बनाई है, उसमें भी उन्होंने इस तरहकी व्यवस्थाकी जरूरत स्वीकार की है।

"आजके नए संयोगोंमें आपको ठीक लगे तो आप प्रांतीय सरकारोंको और देहाती प्रजाको इस बारेमें कुछ सूचना कर सकते हैं।"

मुझे तो इस सूचनामें बहुत सचाई मालूम होती है। हमारे देशके अर्थशास्त्र या माली व्यवस्थाके लिए ऐसे संग्रहकी जरूरत है। जबसे नकद टैक्स देनेकी प्रथा जारी हुई तबसे

देहातोंमें अन्नका संग्रह कम हो गया है। यहां मैं नकद टैक्सके गुण-दोषोंमें उतरना नहीं चाहता, मगर इतना मैं मानता हूं कि अगर देहातोंमें अन्न-संग्रह करनेकी प्रथा चालू होती तो आजकी विपदासे शायद हम बच जाते। जब अंकुश उठ रहे हैं तब अगर वैकुंठभाईकी सूचनाके अनुसार देहातमें अन्नका संग्रह हो और व्यापारी और देहाती ईमानदार बन जायं तो किसीको कष्ट नहीं होगा। अगर किसानको और व्यापारीको योग्य नफा मिले तो मजदूर-वर्ग और शहरके दूसरे लोगोंको महंगाईका सामना करना ही न पड़े। मतलब तो यह है कि अगर सबके अनुकूल जीवन बन जायं तो फिर सस्ते और महंगे भावका सवाल उठ जायगा।

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७६ :

त्याग और उद्यमका नमूना

भाई दिलखुश दीवानजी अपने ४ दिसंबरके खतमें लिखते हैं:

"आप टेकपर अड़े रहनेवाले कराड़ीके पांचाकाकाको पहचानते ही हैं। २९-११-'४७ की दोपहरको उनके भतीजे वालजीभाई बुनाई-काम करते-करते हृदयकी गति बंद हो जानेसे बुनाई-घरके सामने ही मर गए। वालजीभाई बचपनसे ही अपने काकाके पास रहे थे और उनके टेकभरे जीवनका रंग उनपर भी चढ़ा था।

"१९२३में पांचाकाकाने कराड़ीमें पहलेपहल खड्डी चलाई। थोड़े ही दिनोंमें वालजीभाई जीन कारखानेकी अधिक तनखाहवाली नौकरी छोड़कर कराड़ीमें खड्डी चलाने लगे। जीवनकी आखिरी घड़ी-तक उन्होंने खड्डी नहीं छोड़ी और खड्डीके सामने ही जीवन-लीला समाप्त की। वे वहुत होशियार वुनकर थे। कई युवकोंको उन्होंने वुनाई-काम सिखाया था। वे वहुत शांत प्रकृतिके थे। सवके साथ घुलमिल जाते थे और हमेशा हँसते रहते थे। हमारे खादी-काममें वालजीभाईने वुनाई-कामका विकास करक आखिरतक हमारी वहुत मदद की। ऐसे वुनकरके लिए हमें गर्व था। उनकी मौत भी धन्य है! काकाकी टेक भतीजेमें उतरी।

"काकाकी सत्याग्रही जमीनपर वने हुए हमारे वुनाई-घरके सामने ही वालजीभाईने वुनाईका काम करते-करते देह छोड़ी। उनके श्रमजीवी जीवनमें हमने त्याग, सेवा और उद्यमपरायणताके सुमेलका अनुभव किया।

"उनकी सेवा मूक थी। मगर वुनाई-कामके विकासमें वह जवरदस्त वनती गई। ६–७ नौजवानोंका छोटा-सा समूह उन्हें घेरे रहता था और उनकी देखरेखमें वुनाई-काम सीख गया था। यही उनकी विरासत है।

"पांचाकाकाकी टेक अभी जिंदा है। अपनी जमीनमें हल चलानेकी वे अभी 'ना' ही करते हैं। वे पूछते हैं कि 'सच्चा स्वराज अभी आया कहां है? जव प्रजा पुलिसकी मददके विना रहना सीखेगी तभी मेरी स्वराजकी टेक पूरी होगी। वापू सावरमती आश्रम वापिस कहां गए हैं? वापू सावरमती जायंगे तभी जमीनमें हल चलाऊंगा और महसूल भरूंगा।' अभीतक उन्होंने वह जमीन हमारे कार्यालयको ही दे रखी है।"

स्व० वालजीभाई जैसे सेवक हिंदुस्तानको या जगतको

कम ही मिले हैं। 'पेड़ जैसा फल और बाप जैसा बेटा' वाली कहावत उनके बारेमें सच साबित हुई है। पांचाकाकाकी टेक तो अद्वितीय ही रहेगी। सच्चा स्वराज कहां मिला है? आज तो वह बहुत दूर लगता है।

वालजीभाई जैसे बुनकर ६-७ ही कैसे? क्या इतनेसे करांड़ीने स्वराज्य लिया कहा जा सकता है?

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७७ :

सोमनाथके दरवाजे

पंडित सुंदरलालने ('हरिजन'के) हिंदुस्तानी संस्करणमें सोमनाथ मंदिरके प्रसिद्ध दरवाजोंके बारेमें एक सुंदर लेख लिखा है। उत्सुक जनोंको मूल लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। लेखकने जो खास बात उठाई है वह यह है कि जो दरवाजे गजनी ले जाये गए थे वे, जैसा कि उस वक्त कहा गया था, वापस नहीं लाये गए। जो लाये गए वे बनावटी निकले और जब इस जालका पता चला तब दरवाजोंका आम-प्रदर्शन आगरेसे आगे नहीं किया जा सका। पंडित सुंदरलालजीको डर है कि इस प्रसिद्ध मंदिरके जीर्णोद्धारमें भी कहीं ऐसा ही जाल न किया गया हो!

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७८ :

दिल्लीके व्यापारियोंको संदेश

मैं समझता हूं कि जो अंकुश अनाजपर लगाया जाता है, वह बुरा है। हिंदुस्तानका हित उसमें हो नहीं सकता। कपड़ेका अंकुश भी हटना चाहिए। आज जब हमें आजादी मिल गई है तो उसमें हमपर अंकुश क्यों? जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरह जनताके सेवक हैं। जनताकी इच्छाके विरुद्ध वे कुछ कर नहीं सकते। अगर हम उन्हें कहें कि आप अपने पदोंपरसे हट जाइए तो वे वहां रह नहीं सकते। वे रहना भी नहीं चाहते। वे लोग हमेशा कहते हैं कि हम तो लोगोंका ही काम करना चाहते हैं। हम लोगोंके सेवक हैं। बात सच भी है। ३२ बरससे हम अंग्रेजोंसे लड़ते आए हैं और हमने यह बता दिया कि सच्ची लोकसत्ता कैसे चलती है, लेकिन हमारी सत्ता अंग्रेजों-जैसी नहीं है। वे इंग्लैंडसे फौज वगैरह ला सकते थे। हमारे पास वह सब नहीं है; लेकिन हमारे मंत्रियोंके पास इससे भी बड़ी ताकत है। जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरहके पीछे फौज और पुलिससे बढ़कर लोकमतकी ताकत है।

अंकुशकी जरूरत क्यों पड़ी? व्यापारियोंकी बेईमानी और नफाखोरीके डरसे ही अंकुश लगानेकी जरूरत पड़ी। एक मजदूरको अपनी मेहनतके लिए जो पैसा मिलना चाहिए, उससे ज्यादा एक व्यापारीको उसकी मेहनतके लिए क्यों मिलना चाहिए? उसे अधिक नहीं लेना चाहिए। अगर

व्यापारी लोग इतना समझ लें तो आज हिंदुस्तानमें हमें खाने-पहननेकी चीजोंकी जो मुसीबतें बरदाश्त करनी पड़ती हैं, वे न करनी पड़ें। अगर हम-आप इस अंकुशको बरदाश्त नहीं करना चाहते तो उसे हटना ही होगा। अगर आप सच्चे हैं, मैं सच्चा हूं तो अंकुश रह नहीं सकेगा। हम सच्चे न रहें तब तो अंकुश उठनेसे हिंदुस्तान मर जायगा। व्यापारी मंडलको और मिल-मालिकको आपसमें मिलना चाहिए, उनके प्रति जो शक किया जाता है उसे दूर करना चाहिए और एक-दूसरेकी शक्ति बढ़ानी चाहिए। गीताजीका श्लोक है "देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।" देव आसमानमें नहीं पड़े हैं। हमारी लड़कियां जैसे देवियां मानी जाती हैं, वैसे ही हम भी देव हैं। लेकिन कोई अपनेको देव कहते नहीं। वह अच्छा भी है। यह मनुष्यकी नम्रता है। तो हम देवों-जैसे शुद्ध बनें, शुद्ध रहें और सुखी रहें तब हमारी गरीबी, भुखमरी, नंगापन वगैरह सब चला जायगा।

जहांतक, खासकर कपड़ेका संबंध है, लोग गांवोंमें अपनी जरूरतका कपड़ा खुद तैयार कर सकते हैं और उन्हें करना चाहिए। हमारी देवियां जब अपने पाक हाथोंसे सूत कातेंगी तभी करोड़ों रुपये गांववालोंकी जेबोंमें जायंगे। ऐसा शुद्ध कौड़ीका सच्चा व्यापार हम करें। मैं तो अपनेको किसान, भंगी, व्यापारी सभी मानता हूं। शुद्ध कौड़ीका व्यापार आप मुझसे सीखिए। मैं व्यापार करना जानता हूं। आखिर वकालत तो मैंने की है। वकालत भी तो एक किस्मका व्यापार ही है न? आज भी सबकी सेवा करता हूं तो व्यापार ही करता

हूं। किसी भी तरीकेसे पैसे कमा लेना ही व्यापार नहीं है। आप अगर लोगोंकी सेवाके खातिर अंकुश निकालना चाहते हैं, अपने खातिर नहीं, तो वह जायगा ही। आपने लिखा है कि "अंकुश हटानेमें ही हिंदुस्तानकी उन्नति और आजादी रही है।" अगर वह सच्चा है तो आपके व्यापारमें बहुत सचाई होनी चाहिए, बहादुरी होनी चाहिए।

मेरे पास एक पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि हिंदुस्तानमें विदेशी कपड़ा बहुत आने लगा है। यह भी लिखा है कि हमारा कपड़ा बाहर भेजा जाता है। मेरी रायमें ये दोनों चीजें गलत हैं। अब तो आप शायद ऐसा भी कहने लगें कि हम हिंदुस्तानकी स्त्रियोंसे शादी नहीं करेंगे, बाहरकी स्त्रियां लायेंगे। तो वह कहांका व्यापार होगा? मेरी मां तो मेरी ही मां है। क्या दूसरी स्त्री ज्यादा खूबसूरत होगी तो उसे मैं अपनी मां बनाऊंगा? ऐसे ही आपको बाहरके खूबसूरत कपड़े नहीं मंगाने चाहिए।

आज व्यापारी लोग पैसा कमानेके लिए बाहरसे कपड़ा मंगाते हैं; लेकिन हम विदेशी कपड़ा क्यों मंगाएं और हमारा कपड़ा बाहर क्यों भेजें? यहां जितना कपड़ा बनता है उसीसे काम चलावें और हमारी जरूरत पूरी होनेके बाद बचे तो बाहर भेजें। मिलका कपड़ा भले आप बाहर भेजें, लेकिन उसी हालतमें, जब हम जरूरतकी पूरी खादी अपने देशमें तैयार कर लें। कपड़ेका अंकुश तो जाय, मगर साथमें पेट्रोल, लकड़ी वगैरहका अंकुश भी जाना चाहिए।

यहां लिखा है कि "मिलवालोंकी चालसे सावधान रहो।"

तब तो व्यापारियोंकी चालसे और मेरी चालसे भी लोगोंको सावधान रहना होगा। अगर मैं दगा करता हूं, सेवाके नामसे अपना स्वार्थ साधता हूं तो मेरा गला काटना होगा। अगर मिल-मालिक या व्यापारी स्वार्थ साधते हैं तो उनका बहिष्कार करना चाहिए।[1]

नई दिल्ली, २८-१२-'४७

: ७६ :

उर्दू 'हरिजन'

पाठक जानते हैं कि नागरी लिपिमें और उर्दू लिपिमें भी इसी नामसे अलग-अलग साप्ताहिक 'हरिजन' निकलता है। उर्दू लिपिमें जो निकलता है, वह उर्दू 'हरिजन' है। उसकी गिरती हुई हालतके बारेमें श्रीजीवणजी लिखते हैं :

"आज आपको उर्दू 'हरिजनसेवक'के बारेमें लिखनेकी जरूरत आ पड़ी है। इस वक्त इस पत्रकी मुश्किलसे ढाई सौ कापियां खपती हैं। हम लोगोंने जब इसे शुरू किया था तब इसकी लगभग अठारह सौ कापियां खपती थीं। धीरे-धीरे बिक्री कम हो गई, खास करके लाहौरके दंगेके बाद। पहले अकेले लाहौर शहरमें पांच सौसे सात सौ कापियां जाती थीं। मौजूदा हिसाबसे इसे चालू रखें तो हर माह डेढ़ हजार रुपयोंका नुकसान सहना पड़े, यानी सालभरमें बीसेक हजारका नुकसान हो। आप कभी नहीं चाहेंगे कि अखबारको इस तरह चालू रखा जाय। सच पूछा जाय

---

[1] हार्डिंज लाइब्रेरीमें व्यापारियोंकी एक सभामें दिया गया भाषण।

तो सितंबरमें मैं आपसे बिड़ला भवनमें मिला था तब इस बारेमें आपने मुझसे बात की ही थी। मगर मुझे उम्मीद थी कि देशका वातावरण सुधरनेपर इस हालतमें फेर पड़ेगा। इसके सिवा मेरे मनमें एक ख्याल यह था कि लोकसभामें कोई निश्चित प्रस्ताव पास न हो जाय तबतक नुकसान उठाकर भी इसे चालू रखा जाय, जिससे किसी तरहकी गलतफहमी न हो। अभी लोकसभाकी बैठक अप्रैलमें होगी। इसके बाद भी प्रस्तावका काम कब होगा, यह दूसरा सवाल है। इस तरह इस अखबारको अभी चार महीने और चालू रखें तो कोई खास हर्ज नहीं है, मगर पांच-छः हजारका ज्यादा नुकसान सहना पड़ेगा। इस तरह पूरी परिस्थितिका ख्याल करके आप अपना जो निर्णय देंगे, उसके मुताबिक मैं काम करूंगा। मौजूदा कलुषित वातावरणमें हमारा अखबार बंद होनेसे गलतफहमी न बढ़े, इसका खास विचार रखना होगा।"

मेरी हमेशा यह राय रही है कि नुकसान उठाकर कोई अखबार न निकाला जाय। लोगोंको जिस अखबारकी जरूरत हो, उसे वे कीमत देकर लें। जो अखबार विज्ञापन या इश्तहार छापकर अपना खर्च निकाले, उसे मैं स्वावलंबी अखबार नहीं मानता। उर्दू 'हरिजन'को नुकसान उठाकर इतना भी चलने दिया, इसका कारण यह था कि 'हरिजन'की अलग-अलग भाषाकी प्रतियोंमें कुल मिलाकर नुकसान नहीं हो रहा था। मगर इस तरह अखबार निकालनेकी भी कोई हद होती है। हिंदुस्तानी और दो लिपियोंके बारेमें मेरे विचार पहले जैसे ही हैं। इसलिए अभी थोड़े समयतक जैसे चलता है वैसे ही उर्दू अखबार निकलता रहेगा। इस अर्सेमें गुजराती 'हरिजन' पढ़नेवाले और दूसरे लोग सोच लें कि वे उर्दू 'हरिजन' निकलवाना चाहते हैं या नहीं। अगर चाहते हैं तो उन्हें उसके ग्राहक

बढ़ानेमें तबतक मदद करनी चाहिए, जबतक उनकी तादाद दो हजारतक न पहुंच जाय। इसके साथ ही वे दूसरी बात भी सोच लें। अगर उर्दू लिपि पसंद न पड़ती हो और उर्दू लिपिमें 'हरिजन' बंद करना पड़े तो नागरी लिपिमें 'हरिजन' 'न निकालनेका धर्म पैदा होगा। नागरी लिपिमें 'हरिजन' निकालनेका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं समझता। सुधारकके नाते मेरा धर्म है कि या तो मैं दोनों लिपियोंमें अखबार निकालूं या फिर एकमें भी नहीं।

'हिंदी' नाम न रखकर 'हिंदुस्तानी' क्यों रखा और नागरी-उर्दू दोनों लिपियोंका आग्रह क्यों है, इसके बारेमें पहले अच्छी तरहसे लिखा जा चुका है। अब मुझे कोई नई दलील नहीं सूझती। यह लेख सिर्फ इतना बतलानेके लिए लिखा है कि उर्दू लिपिमें निकलनेवाले 'हरिजन'को किस तरह चालू रखा जा सकता है। मैं यह माननेकी हिम्मत रखता हूं कि मेरी आशा सफल होगी।

नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८० :

खादकी व्यवस्था

"इधर-उधर बिखरा हुआ कूड़ा, द्रव हो या पदार्थ, जनताके स्वास्थ्य और सुविधाका रोड़ा होता है, जब कि अपने उचित स्थानपर इकट्ठे उसी कूड़ेकी खाद काममें आती है। कूड़ा

बिखराकर भूमिमाताका भोजन छीन लेना संगीन जुर्म है।"
ऐसा मीराबहनने २३-११-'४७के 'हरिजन' (पृष्ठ ४२८-२९)में प्रकाशित अपने एक पत्रमें कहा है, जो इस प्रकार है :

"हम अपनी भूमाताके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। वह परिश्रमपूर्वक हमें भोजन देती है, लेकिन इसके बदलेमें हम उसे नहीं खिलाते। सुपुत्रोंकी तरह अगर हम अपनी पूजनीया मांकी सेवा नहीं करते तो वह हमारा पालन-पोषण कैसे करेगी? हर साल हम खेत जोतकर उनमें बीज बोते और फसल काटते हैं, लेकिन जमीनको उसकी खूराक, खाद कभी-कभी ही देते हैं। जो देते भी हैं वह अधकच्चा कूड़ा होता है। जिस तरह भलीभांति पकाया भोजन हमें चाहिए, वैसे ही जमीनको भी भलीभांति तैयार की गई खाद जरूरी है।"

उत्सुक जन इस पत्रकी प्रति मीराबहन, किसान आश्रम, ऋषिकेश (हरिद्वारके पास)से मंगा सकते हैं।
नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८१ :

धूलका धान

'धूलमेंसे धान' ऐसा शीर्षक भी रखा जा सकता था, मगर मैंने 'धूलका धान' शीर्षक रखना पसंद किया है।

धूलको छानकर उसमेंसे अनाजके दाने निकाल लेनेकी क्रियाको मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हूं। उसी तरह महाउद्योगी चीनके लोग धूल या रेतमेंसे सोनेकी रज धोकर

निकालते हैं, इस क्रियाको भी मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हूं। यहां धूलका रूप बदल गया और धानका तो बहुत ही बदल गया। मामूली तौरपर हम अनाजको धान कहते हैं। मगर जब धान शब्द सोनेकी रजके लिए काममें लाया जाता है तब तो उसके रूपमें बहुत बड़ा फर्क हुआ न? यहां धानका मतलब ऐसी किसी उपयोगी चीजसे है, जिसकी कीमत आंकी जा सके।

मगर 'धूलका धान' शब्दोंका प्रयोग करें तब धूलका रासायनिक रूप बदला हुआ माना जायगा। जैसे कि धूल यानी मिट्टीका अनाज बनाएंगे तब धूलका धान करना कहा जायगा। मिट्टीमें अनाजके बीज डालें, उसमें जरूरतके मुताबिक पानी दें तो अनाज पैदा हो। इसे मैं धूलका धान करना कहता हूं। अपनी भाषाका रूप निश्चित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी उपेक्षा की गई है।

अब मैं मूल चीजपर आता हूं। अंग्रेजी शब्द 'कम्पोस्ट'-को मैं धूलका धान मानता हूं। कम्पोस्ट यानी गोबर और मनुष्य, जानवर और पक्षियोंकी विष्ठा या मल, घास, कूड़ा-करकट, छिलके, जूठन और पेशाब-जैसी चीजोंके उचित मेलमेंसे पैदा होनेवाली सुवर्णरूपी जीवित खाद। इसे खेतकी मिट्टीमें मिलाकर उसमें बीज बोएं तो ऐसे खेतमें कम-से-कम दुगुनी फसल तो जरूर पैदा हो और फिर भी जमीन अपना कस न छोड़े।

इसके बारेमें मीराबहन खूब मेहनत उठा रही हैं। उन्होंने ऋषिकेशमें किसान-आश्रम खोला है। जो काम उन्होंने दिल्लीमें

शुरू किया, उसे वहांसे जारी रखना चाहती हैं, उन्होंने इस बारे-में छोटी-छोटी पत्रिकाएं निकालना शुरू किया है। उनके पाससे पत्रिका मंगवाई जा सकती है। उनकी पत्रिका उर्दू लिपिमें निकलती है। खुद मीराबहनको हिंदुस्तानीका ज्यादा ज्ञान नहीं है। इससे वह अंग्रेजीमें लिखती हैं और उनके मातहत काम करनेवाले उसका उर्दूमें तरजुमा करते हैं।

नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८२ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोंने मुझे कई बार पूछा कि मैंने तात्यासाहब केळकर-जैसे महान् देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यों नहीं किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोंमें मेरे बारेमें बहुत बड़ी गलतफहमी है। इन कारणोंने मुझपर असर नहीं किया, हालांकि मेरे टीकाकारोंके मुताबिक इन्हीं कारणोंसे मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित होना चाहिए था।

मृत्यु-जैसी बड़ी भारी घटनाका आम रिवाजके मुताबिक उल्लेख कर देना मैं बहुत अनुचित मानता हूं; लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम कबूल कर लूंगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मों और मृत्युओंका उल्लेख करना 'हरिजन'के लिए आम रिवाज होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन' पत्रोंको ध्यानसे पढ़नेवाले पाठकोंने देखा होगा कि 'हरिजन'ने ऐसे किसी रिवाजको नहीं माना है। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अरसेसे तो मैं नियमसे अखबार भी नहीं पढ़ सका हूं।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे फायदा होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके नाते मैं उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १९१९ में अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैंने यह सिफारिश की थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य तात्यासाहबको और देशबंधु श्रीनिशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दें तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हूं। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोंकी तारीफमें मुझे यह कहना चाहिए कि हालांकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेश कर दिया, लेकिन उन्होंने कभी उसमें रुकावट नहीं डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमें तात्यासाहबने हमेशा ऐसी

टीका की, जिससे उसे सुधारने-संवारनेमें मदद मिली। इसके अलावा मेरे सुझावपर ही तात्यासाहवको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य वनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नहीं आता जव उनकी टीका—हालांकि वह कभी-कभी कड़ुवी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे; लेकिन सभ्य और मित्रता भरे थे।

मुझे वहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके वड़े विद्वान लेखक थे। मुझे इस वातका अफ़सोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहव और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोंकी वुद्धिका अमृतपान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नहीं मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपंत चिंतामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन वात होगी।

नई दिल्ली, ३१-१२-'४७

: ८३ :

अहिंसा कभी नाकाम नहीं जाती

एक यूरोपियन भाई लिखते हैं :

"रॉय वाकरने आपके कामपर, जो सराहनेके काविल है, 'स्वोर्ड ऑव गोल्ड' ('सोनेकी तलवार') नामकी एक किताव लिखी है, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े होने लगते हैं। मैंने उस कितावको ध्यानसे पढ़ा। उससे पता

चला कि आपने जिंदगीभर अहिंसापर चलने और दूसरोंको चलानेकी पूरी कोशिश की है। किताब पढ़कर मेरी तसल्ली हो गई कि कम-से-कम जहांतक हिंदुस्तानके नेताओं और आम लोगोंका सवाल है, अपनी अपार लगनकी बदौलत आपको अपने काममें कामयाबी मिली है। ब्रिटेनने जो जाहिरा तौरपर इस तरह नेकदिली और दोस्तीके साथ हिंदुस्तान छोड़ दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसाकी कदर अब सिर्फ आपके मुल्कतक ही सीमित नहीं है। मालूम होता है कि हिंसाकी मजबूत मोटी दीवारें पहली बार कहीं-कहीं कुछ टूटी हैं और इन्सानी समाजके लिए कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

"पर जॉर्ज डेवीजके 'पीस न्यूज' के आखिरी संस्करणमें यह छपा है कि आप खुद एक तरह अपनी हार मान रहे हैं। इसे पढ़कर मुझे उतनी ही ज्यादा निराशा हुई। मेरा दिल यह पढ़कर बड़ा दुखी हुआ कि आपको खुद आज जो निराशा अपने दिलमें महसूस हो रही है, वह पहले कभी न हुई थी। यह बिलकुल सच है कि ईश्वर आदमीकी कामयाबी नहीं देखता, बल्कि उसकी सचाई और प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुःख होता है कि इन्सानी समाज़ हिंसामें इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोड़ेसे साथियोंने जिंदगीभर जो रूहानी ताकत दिखाई है और जबरदस्त कुरबानियां की हैं, उनका भी समाजपर असर नहीं हुआ।

"मैं मानता हूं कि चीजोंकी असलियतको जितनी अच्छी तरह आप देख और समझ सकते हैं, मैं नहीं देख सकता। आप कहीं अच्छा समझ सकते हैं। फिर भी मैं नहीं मान सकता कि आपकी इतनी जबरदस्त और बहादुरीकी कोशिशें निकम्मी जाएं और इन्सानी समाजपर उनका असर न हो। आपने अपने शब्दोंसे और अपने कामोंसे जो अच्छे बीज मेहनतके साथ लगातार अपने चारों तरफ बोए हैं, वे फिजूल जाएं, यह दिल नहीं मानता।

"जो हो, कम-से-कम मैं (और मुझे भरोसा है कि जो बात मैं कहता हूं वही करोड़ोंके दिलसे निकल रही है) अपना यह जरूरी फर्ज समझता हूं कि आप जिस चीजको इन्सानी समाजके भले और उसके छुटकारेका एकमात्र रास्ता समझते थे, उसके लिए आपने जो अपनी सारी जिंदगी दे दी, इसके लिए मैं दिलसे आपका हद दर्जेका अहसान मानूं।"

जिस रिपोर्टका आपने जिक्र किया है, वह मैंने नहीं देखी। जो हो, मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब अहिंसाकी असफलतासे नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है, उसका मतलब यह है कि मैं खुद वक्तपर इस बातको न देख सका कि जिसे मैं अहिंसा समझा था, वह अहिंसा थी ही नहीं, बल्कि कमजोरोंका मंद विरोध था, जो किसी मानीमें भी कभी अहिंसा कहा ही नहीं जा सकता। आज हिंदुस्तानमें जो भाई-भाईकी लड़ाई हो रही है, वह उन ताकतोंका सीधा नतीजा है जो तीस बरसके कमजोरोंके कारनामोंने पैदा कर दी हैं। इसलिए आज दुनिया-भरमें जो हिंसा फूट पड़ी है, उसे ठीक-ठीक देखनेका सही तरीका यही है कि हम इस बातको समझें कि मजबूत लोगोंकी उस अहिंसाका ढंग, जिसे कोई जीत ही नहीं सकता, अभी हमने पूरी तरह नहीं समझ पाया है। सच्ची अहिंसाकी ताकतका एक माशा भी कभी ज़ाया नहीं जा सकता। इसलिए मुझे यह घमंड नहीं करना चाहिए और न आप-जैसे दोस्तोंको इस धोखेमें रहना चाहिए कि मैंने अपने अंदर भी कोई बड़ी बहादुरीभरी और टकसाली अहिंसा दरसाई है। मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूं कि मैं बिना रुके उस तरफ बढ़ा चला जा रहा हूं। मेरी इस बातसे अहिंसामें आपका विश्वास

मजबूत हो जाना चाहिए और इससे आपको और आप-जैसे दोस्तोंको इस रास्तेपर और तेजीसे बढ़नेमें मदद मिलनी चाहिए।
नई दिल्ली, १–१–'४८

: ८४ :

नपी-तुली बात कहिए

मलाबारसे एक भाई लिखते हैं :

"२१ दिसंबर, १९४७ के 'हरिजन' में श्री देवप्रकाश नय्यरने 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के बारेमें जो बातें विश्वासके साथ लिखी हैं, उनसे आश्चर्य होने लगता है। उन्होंने यह बताया है कि तकलीमें सारा ज्ञान समाया हुआ है या तकलीसे सारा ज्ञान हासिल किया जा सकता है या तकली ही सारे ज्ञानका निचोड़ है। मैं खुद लंबे समयसे कातता हूं और जीवनकी गांधीवादी फिलासफी (दर्शन) में मेरा विश्वास है; लेकिन ऊपरका लेख पढ़कर मुझे बड़ा अचरज हुआ। यह कहना कि तकली ज्ञानका 'अंत' है और उसके जरिए दुनियाके हर विषयका शिक्षण दिया जा सकता है, नीम हकीमकी उस गोलीकी तरह है, जिसके बारेमें हर तरहकी बीमारीको अच्छा करनेका दावा किया जाता है। गांधीजी भी तकलीके लिए ऐसी जादूभरी ताकतका दावा नहीं करते। इसमें कोई शक नहीं कि तकली, चरखे और कताईका शिक्षाकी उचित योजनामें, खासकर नई तालीममें, एक स्थान है। लेकिन यह कहना कि तकली स्वभावसे हमें गणित, पदार्थ-विज्ञान, अर्थशास्त्र वगैरहके अध्ययनमें ले जाती है, 'भावुक मूर्खता'के सिवा कुछ नहीं है। शिक्षाके क्षेत्रमें तकलीके गुणों और उपयोगिताको बढ़ा-चढ़ाकर बताना उतना ही बुरा है, जितना कि

दूसरे लोगोंद्वारा उसके सही स्थानको माननेसे इन्कार करना, बल्कि उससे भी बदतर है। यह पढ़कर हँसी आती है कि तकलीके जरिए हम पदार्थ-विज्ञान वगैरहके वैज्ञानिक नियमोंका अध्ययन कर सकते हैं। गांधीजीने देशकी माली हालत सुधारने और गरीबीको मिटानेके लिए तकली और चरखेको दाखिल किया और कहा कि जब आम जनता इन दोनोंका उपयोग करेगी तो वह नैतिक दृष्टिसे ऊपर उठेगी। इस तरह गांधीजी तकलीके लिए आर्थिक और नैतिक गुणोंका ही दावा करते हैं (जिसकी मुझे यहां ज्यादा चर्चा करनेकी जरूरत नहीं)। और इतना दावा काफी है। तकलीके लिए इससे ज्यादा बड़ा दावा क्यों किया जाय? इसकी जरूरत भी क्या है? तकलीका उत्साह रखनेवालोंको कताईके पक्षमें अपनी दलीलें इस हदतक नहीं ले जानी चाहिए कि लोग उनपर हँसें। कताईके मकसदको इस तरह आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।"

इससे जाहिर होता है कि खत लिखनेवाले भाईने श्री देवप्रकाश नय्यरके तकलीके बारेमें लिखे लेखको पूरी सावधानीसे नहीं पढ़ा है। मैंने उसे पढ़ा है। उसमें उन्होंने ऐसा कोई दावा नहीं किया है, जिसकी खत लिखनेवाले भाईने कल्पना कर ली है। 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के लेखकने यह नहीं कहा है कि "तकलीमें सारा ज्ञान समाया हुआ है", या कि "वह तकलीके जरिये हासिल किया जाता है"; और न उन्होंने यह कहा है कि "तकली ज्ञानका निचोड़ है।" उनका सिर्फ इतना ही कहना है कि जो बहुत-सा ज्ञान हम किताबोंके जरिये हासिल करते हैं, वह योग्य शिक्षकोंद्वारा दस्तकारियों-की मारफत ज्यादा अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। यह हकीकत कि खत लिखनेवाले भाईको, जो लंबे समयसे कताई

करते हैं, श्री देवप्रकाश नय्यरके दावेसे 'बड़ा अचरज' हुआ है और वह उसे 'भावुक मूर्खता' कहते हैं, इस बातको साबित करती है कि शिक्षा तकलीमें नहीं रहती, बल्कि एक शिक्षा-शास्त्रीमें रहती है, जो श्री देवप्रकाश नय्यरकी तरह तकलीकी शक्तियों और संभावनाओंकी परीक्षा करके ऊपरका दावा करनेका हक रखता है।

मुझे डर है कि खत लिखनेवाले भाईके इस आत्म-संतोषको मुझे दूर कर देना पड़ेगा कि मैंने भी निर्दोष दिखाई देनेवाली तकलीके लिए "आर्थिक और नैतिक गुणों"के सिवा दूसरे गुणोंका दावा नहीं किया है। मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि मेरे इस मामूली दावेको भी सब लोगोंने स्वीकार नहीं किया है। शायद हिंदुस्तानमें मैं पहला आदमी था, जिसने तकलीको उन गुणोंसे विभूषित किया, जिन्हें बढ़-चढ़ कहा जा सकता है। इस क्षेत्रमें अमली शिक्षा देनेवाले शिक्षकोंने दस्तकारियोंमें उनसे कहीं ज्यादा संभावनाएं खोज निकाली हैं, जिनका मैंने जिक्र किया था। इसका सारा श्रेय उन्हींको है।

मैं खत लिखनेवाले भाईको जोरोंसे यह सलाह दूंगा कि वह नम्रतासे श्री देवप्रकाश नय्यरके सावधानीसे पेश किए गए दावेको मंजूर करें और इस बारेमें उनसे ज्यादा जानकारी पानेकी कोशिश करें कि उन्होंने अपने विद्यार्थियोंको नई तालीमके पाठ सिखानेमें तकलीके बारेमें यह खोज कैसे की। अगर उनकी खोज कल्पित होगी तो खत लिखनेवाले भाईको जल्दी ही इसका पता लग जायगा और श्री देवप्रकाश नय्यरको अपनी हार माननी पड़ेगी। कहा जाता है कि एक सेवकके

अपनी डालसे नीचे गिरनेसे न्यूटनका तेज दिमाग गुरुत्वाकर्षणका नियम खोज सका था ।

नई दिल्ली, २–१–'४८

: ८५ :

क्या मैं इसका अधिकारी हूं ?

मेहमानदारी करनेवाले हिंदुस्तानका किनारा छोड़नेसे पहले रेवरेंड डॉ० जोन हेनिस होम्सने मुझे एक लंवा खत लिखा था । उसमें वह कहते हैं :

"वेशक, हालके महीनेमें होनेवाली दुःखभरी घटनाओंसे आप वहुत ज्यादा दुखी हुए हैं—उनके वोझसे आप दव-से गए हैं; लेकिन आपको कभी यह महसूस नहीं करना चाहिए कि इससे आपकी जिंदगीके कामको किसी तरह धक्का लगा है । मनुष्य-स्वभाव वहुत ज्यादा सहन नहीं कर सकता, वह वहुत वड़े दवावके नीचे टूट पड़ता है, और इस मामलेमें यह दवाव जितना अचानक था, उतना ही भयानक भी था । लेकिन इस मौकेपर भी हमेशाकी तरह आपका उपदेश सच्चा और आपका नेतृत्व ठोस वना रहा । आपने अकेले हाथों हिंदुस्तानको वरवादीसे वचा लिया और पलभरके लिए जो हार दिखाई दी, उसमेंसे जीतको जन्म दिया । पिछले कुछ महीनोंको मैं आपके अनोखे जीवनकी वड़ी-से-वड़ी विजयके महीने मानता हूं । इन अंधेरेसे भरे दिनोंमें आप जितने महान् सावित हुए हैं, उतने पहले कभी न हुए थे ।"

मुझे ताज्जुव होता है कि क्या यह दावा सावित किया जा सकता है ? इसमें मुझे जरा भी शक नहीं कि अहिंसाके

वारेमें डॉ० होम्सने जो कुछ कहा है, उससे कई गुना ज्यादा साबित करके दिखाया जा सकता है। मेरी कठिनाई बुनियादी है। क्या डॉ० होम्सने अहिंसाकी जितनी तारीफ की है, उसके उतने गुण भी दुनियाको दिखाने लायक योग्यता मैंने हासिल कर ली है? मैं अहिंसाके कामको कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यों न जानूं, फिर भी उसके बारेमें ऐसे दावे, जिन्हें बिना किसी शकके साबित न किया जा सके, पेश करनेमें ज्यादा-से-ज्यादा सावधानी रखना मैं हर कारणसे जरूरी समझता हूं।

नई दिल्ली, ३–१–'४८

: ८६ :

राष्ट्र-भाषा और लिपि

शिलांगसे श्री रमेशचंद्रजी पूछते हैं :

(१) "राष्ट्रभाषाको 'हिंदी' कहिये या 'हिंदुस्तानी' यह कोई खास विवादका सवाल नहीं है। रोजमर्राकी बातचीतमें तो चालू हिंदुस्तानी काममें आएगी ही। ऊंचे साहित्य, विज्ञान व ऐसे दूसरे विषयोंके लिए नए शब्दोंका कोष संस्कृत भाषासे ही बनेगा, इससे भी शायद ही कोई इन्कार करेगा। यह बात साफ-साफ सबको बतलाई जाय तो क्या हर्ज है?"

इस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर एक नामके सब एक ही मानी करें तो झंझट रहती ही नहीं। झगड़ा नामका नहीं है, कामका है। काम एक हो तो अनेक नामका विरोध वितंडावाद होगा।

ऊंचे साहित्य और विज्ञानके शब्द संस्कृतमेंसे ही क्यों हों? इस बारेमें कोई आग्रह होना ही नहीं चाहिए। एक छोटी-सी समिति ऐसे शब्दोंका कोष बना सकती है। इसमें बात होगी चालू शब्दोंको इकट्ठा करनेकी। मान लीजिए कि एक अंग्रेजी शब्द हिंदुस्तानीमें चल पड़ा है, उसे निकालकर हम क्यों खास संस्कृत शब्द बनावें? ऐसे ही, अगर अंग्रेजीका चलता शब्द ले लें तो उर्दू क्यों नहीं? 'कुरसी' शब्दके लिए 'चतुष्पाद-पीठिका' लें कि बिना रोकटोकके 'कुरसी' लें? ऐसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

(२) "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुए भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा। तब दो लिपिके बदले एक लिपि, जो सभी प्रांतोंके लिए सहज और आसान है, क्यों न मानी जाय?

"दो लिपि माननेके मानी भी मैं समझना चाहता हूं। क्या उसका यह मतलब होगा कि केंद्रीय सरकारकी सब घोषणाएं दोनों लिपियोंमें छापी जायंगी?

"फिर, तार-घर वगैरहसे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी एक ही लिपिमें लिखे जायंगे। दूसरी लिपिका उपयोग इन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मैं जानना चाहता हूं।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं (हालांकि बहुतेरे लोग ऐसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाइयोंको खुश करनेके लिए रखी गई है। हमें तो यह देखना चाहिए कि किसीपर भी अन्याय किए बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा। नागरीके चलनसे मुसलमान भाइयोंको नुकसान होगा, ऐसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहांतक मैं समझता हूं, दोनों लिपिका चलन थोड़े अर्सेके लिए

ही जरूरी है, जिससे कि वे लोग जो इन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे-धीरे जान जायं। आखिरमें सभी एक लिपिको अपनावें, इसमें कैसे संदेह हो सकता है?"

दो लिपिको रखते हुए जो आखिरमें आसान होगी वही चलेगी। यहां बात इतनी ही है कि उर्दूका बहिष्कार न हो। इस बहिष्कारमें द्वेष है। इस झगड़ेकी जड़में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। ऐसे मौकेपर हम, जो एक हिंदुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारोंकी लड़ाईसे नहीं, उनका फर्ज होता है कि दोनों लिपिको जगह दें। हम यह भी न भूलें कि बहुतेरे हिंदू व सिक्ख पड़े हैं, जो नागरी लिपि जानते ही नहीं। मुझे इसका तजरबा हमेशा होता है।

करोड़ोंको दोनों लिपि सिखानेकी बात नहीं है। जिनको अपने सूबेसे बाहर काम करना है, उन्हें वे सीखनी चाहिएं। केंद्रके दफ्तरमें सब कुछ दोनों लिपियोंमें छापनेकी बात भी नहीं है। जो इश्तहार सबके लिए हों, उन्हें दोनों लिपियोंमें छापना जरूरी है। जब दोनों कौमोंके बीच जहर फैल गया है तब उर्दू लिपिका बहिष्कार लोक-वादका विरोध ही बताता है।

तार आदि जब रोमन लिपिमें नहीं लिखे जायंगे तब शायद उर्दू या नागरी लिपिमें लिखे जायंगे। इसे मैं छोटा सवाल मानता हूं। जब हम अंग्रेजीका और रोमन लिपिका मोह छोड़ेंगे तब हमारा दिल और दिमाग ऐसा साफ हो जायगा कि हम इस झगड़ेके लिए शरमाएंगे।

किसीको राजी रखनेके लिए कोई बेजा काम हम कभी न करें। पर राजी रखना हर हालतमें गुनाह नहीं है।

एक ही लिपिको सब खुशीसे अपनावें तो अच्छा ही है। ऐसा होनेके लिए भी दो लिपियोंका चलना आज जरूरी है।
नई दिल्ली, ४–१–'४८

: ८७ :

छात्रालयोंमें हरिजन

भाई परीक्षितलाल लिखते हैं :

"बंबई सरकारने छुआछूत दूर करनेके दो कानून बनाए हैं। उनके आधारपर मंदिर, कुंए, धर्मशालाएं, स्कूल, होटल वगैरह तमाम जगहें, जहां दूसरे हिंदू जा सकते हैं, वहां हरिजन भी खुले तौरपर जा सकते हैं। ऊपर बताए हुए कानूनोंमें सार्वजनिक छात्रालय भी आ जाते हैं और उनके अनुसार बंबई प्रांतके कई छात्रालय, जो आजतक सिर्फ हिंदुओंकी ऊंची मानी जानेवाली जातियोंके लिए ही खुले थे, अब अपने-आप हरिजनोंके लिए भी खुले माने जा सकते हैं।

"थोड़े वक्तमें स्कूलों और कॉलेजोंका चालू वर्ष पूरा होगा। यानी ऐसे सार्वजनिक छात्रालयोंमें नई भरती करनेका सवाल खड़ा होगा। मेरा ऐसा अनुभव हुआ है कि ऐसे छात्रालयोंमें हरिजन विद्यार्थियोंको दाखिल करनेके बारेमें और उनके साथ बैठकर खाना खानेके बारेमें विद्यार्थियोंका विरोध जितनी हदतक कम हुआ है, उतनी हदतक छात्रालयोंके संचालक आगे नहीं बढ़ सके हैं। नतीजा यह हुआ है कि ज्यादातर विद्यार्थियोंकी सम्मति होते हुए भी संचालक-मंडलोंने स्वयं आगे बढ़कर अपने छात्रालयोंका दरवाजा हरिजनोंके लिए खुला नहीं रखा। संचालक-मंडलोंको अब कानून भी मदद करता है। ऐसी हालतमें हरिजन

विद्यार्थियोंको कानूनका सहारा लेकर छात्रालयोंमें दाखिल होनेकी ज
पड़े उससे पहले, उम्मीद है कि संचालक-मंडल अपने आप छात्राल
दरवाजे खोलकर हिंदुस्तानकी सच्ची सेवा करेंगे।

"सूरतमें पाटीदार आश्रम और अनाविल आश्रममें हरिजन विद्य
बाकायदा दाखिल हुए हैं। भावनगरके तापीबाई गांधी कन्यागृहमें हरि
छात्राएं हैं। इस तरह क्या आप गुजरात-काठियावाड़के सभी स
जनिक और जातीय छात्रालयोंके संचालकोंसे सिफारिश करेंगे कि
हरिजन विद्यार्थियोंको समान भावसे दाखिल कर लें?"

इसमें मैं इतना और बढ़ा देना चाहता हूं कि अगर विद्यार्थ
सच्चे हों तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। इस जमानेमें विद्या
र्थियोंके आगे संचालकोंकी नहीं चल सकती। उसमें भ
जब धर्म विद्यार्थियोंके पक्षमें हो और संचालक अधर्म क
रहे हों तब तो संचालकोंकी बिलकुल ही नहीं चल सकती।
दुनियाको आम खानेसे काम है, पेड़ गिननेसे नहीं। चाहे
जो कारण हो, छात्रालयोंमें हरिजन हक और इज्जतके साथ
दाखिल होने चाहिए।

नई दिल्ली, ४-१-'४८

: ८८ :

प्रमाणित-अप्रमाणितका फर्क

नीचेके सवाल आज उठ सकते हैं। यह जमानेके बदलनेकी
निशानी है :

"आजादी मिलनेके बाद शुद्ध खादी, अप्रमाणित खादी, मिलके

कपड़े और विलायती कपड़ेमें बहुत फर्क नहीं रह जाता। जितनी जरूरत हो, उतना खुद ही कातकर और बुनकर पहनें तो जरूर फर्क हो जाता है; क्योंकि इससे एक खास विचार-धाराका पता चलता है। पर जितना कपड़ा चाहिए, उतना सूत तो काता नहीं जाता। खादी तो खादी-भंडारसे ही ख़रीदते हैं। उसके लिए भी जितना सूत देना पड़ता है, खुद नहीं काता जाता है। शुद्ध खादीमें कोई सुधार नहीं दिखाई देता। अप्रमाणित खादीमें बहुत तरहके कामके कपड़े आते हैं। इसका कारण यह दिखाई देता है कि शुद्ध खादीवालोंको सुधारमें कोई रस नहीं है। आजकल मजदूरी इतनी ज्यादा हो गई है कि जीवन-वेतनका भी सवाल नहीं रहता। फिर जरूरत हो तो अप्रमाणित खादी लेनेमें क्या हर्ज है?

"सारे देशमें कपड़ेकी काफी कमी है। राष्ट्रीय सरकार खुद विलायती कपड़ा मंगाती है। विलायती कपड़ा मंगाना न मंगाना सरकारके हाथमें है। फिर भी वह कपड़ा मंगाती है तो फिर खरीदनेमें क्या बुराई है?"

प्रमाणित खादी ही प्रमाण हो सकती है। यहां 'प्रमाणित' शब्दसे असली मतलब पूरी तरह जाहिर नहीं होता। प्रमाणित-का असली मतलब है—वह खादी जिसमें सूत पूरे-पूरे दाम देकर खरीदा गया है, जिसे ठीक दाम देकर हाथसे बुनवाया गया है और खादीका दाम नफाखोरीके लिए नहीं, बल्कि लोक-लाभके लिए ही रखा गया है। स्वावलंबी यानी अपनी बनाई खादीके सिवा बाकी ऐसी खादी बाजारसे लेनी पड़ती है। उस खादीके लिए कुछ प्रमाण जनताके लिए जरूरी है। ऐसा प्रमाण देनेवाली एक ही संस्था हो सकती है। वह है चरखा-संघ। इसलिए चरखा-संघ जिसे प्रमाण दे, वही प्रमा-णित खादी।

उसे छोड़कर जो खादी मिले, वह अप्रमाणित हो जाती है।

प्रमाण-पत्र न लेनेमें कुछ-न-कुछ दोष तो होना ही चाहिए। दोषवाली खादी हम क्यों लें ? दोषवाली और बेदोषकी खादीमें फर्क है, इसमें शकके लिए गुंजायश ही नहीं हो सकती।

यह सवाल किया जा सकता है कि प्रमाण-पत्रकी शर्तमें ही दोष हो सकता है। अगर दोष है तो उसे बताना जनताका धर्म है। आलसके कारण दोष बतानेके बदले अप्रमाणित और प्रमाणितका फर्क उड़ा देना किसी हालतमें ठीक नहीं है। हो सकता है कि हममें कुचाल इतनी बढ़ गई है कि हम ठीक चाल जनतामें चल ही नहीं सकते, या जिसे हम ठीक चाल मानते हैं, वह धोखा ही है। इस हदतक जाना जनताके प्रतिनिधिका काम नहीं है।

खादी, स्वदेशी मिलके कपड़े और विदेशी कपड़ेमें फर्क है, इस बातमें शक ही कैसे पैदा हो सकता है ? परदेशी राज गया, इसलिए परदेशी कपड़ा लाना ठीक बात कैसे हो सकती है ? ऐसा खयाल करना ही बताता है कि हम परदेशी राजके विरोधका असली कारण ही भूलते हैं। परदेशी राज होनेसे मुल्कको बड़ा माली नुकसान होता था। इस माली नुकसानको मिटाना ही स्वराजका पहला काम होना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि स्वराजमें शुद्ध खादीको ही जगह है। उसीमें लोक-कल्याण है। उसीसे समानता पैदा हो सकती है।

नई दिल्ली, ५-१-'४८

: ८६ :

खादीकी मारफत

एक सज्जन लिखते हैं :

"सारे हिंदुस्तानकी कपड़ेकी कमी ६ माहमें दूर हो सकती है। उसके लिए दो शर्तें हैं—१. गांव-गांवमें सूत कताई और बुनाई कराना प्रांतीय सरकारों और हिंद सरकारकी नीति हो, और इस काममें सरकारी नौकरोंसे मदद मिले। २. अपने प्रांत व देशके बड़े नेता इधर अधिक ध्यान देकर इसका काफी प्रचार करें।"

कपड़ोंकी कमी पूरी करनेके लिए ये शर्तें आसान लगनी चाहिए। दोनों शर्तोंका पालन कांग्रेसी हुकूमतका धर्म है। जितनी ढिलाई है, सब धर्म-पालनकी कमी साबित करती है। ढिलाई आई है, इसमें शक नहीं है। उसे मिटानेका आज सबसे अच्छा मौका है; क्योंकि कपड़ोंके दाम बहुत बढ़ गए हैं। इसका सबब हमारी नादानी ही है। अब यह कैसे मिटे? जिनका खादीमें अटल विश्वास है, उनके व्यवहारसे, उनकी बुद्धिके तेजसे और तजरबेसे। जब हुकूमतकी नीति खादीके अनुकूल होगी तब कपड़े आदिपर अंकुशकी बात अपने आप छूट जायगी। इस बीच आज कपड़ोंपर जो अंकुश है, वह गरीबोंके हितमें जल्द-से-जल्द जाना चाहिए।

नई दिल्ली, ५–१–'४८

: ९० :

उर्दू लिपिका महत्त्व

करीब दो हफ्ते हुए, मैंने 'हरिजन बंधु' में इशारा किया था कि बिक्री कम हो रही है, इसलिए उर्दू 'हरिजन' शायद बंद करना पड़ेगा। घाटेका सवाल छोड़ दें तो भी जब मांग नहीं तब उसे छापनेमें कोई अर्थ नहीं। बिक्रीका गिरना मेरे लिए तो इस बातकी निशानी है कि लोगोंको यह चीज़ पसंद नहीं है। लोग इससे नाराज हैं। अगर मैं इस चीजकी तरफ ध्यान न दूं तो मेरी मूर्खता होगी।

मेरे विचार बदल नहीं सकते, खासकर हमारे इतिहासके इस अनोखे मौकेपर। मैं मानता हूं कि खास सिद्धांतका सवाल न हो तो मुसलमानों या किसी दूसरेको दुःख देनेवाली कोई बात करना गलती है। जो नागरी लिपिके अलावा उर्दूलिपि सीखनेकी तकलीफ उठाएंगे, उन्हें कोई नुकसान पहुंचनेवाला नहीं। उन्हें यह फायदा होगा कि वे उर्दू भी सीख जायंगे। अगर आज हमारे देशमें बहुतसे लोग उर्दू जानते हैं। अगर आज हमारी विचारधारा टेढ़ी न चलती तो यह सीधी-सादी बात समझनेके लिए किसी दलीलकी ज़रूरत ही न थी। उर्दूलिपिमें कई कमियां हैं। मगर खूबसूरती और शानमें वह दुनियाकी किसी भी लिपिका मुकाबला कर सकती है। जबतक अरबी-फारसी जिंदा हैं, उर्दूलिपि मर नहीं सकती, अगरचे उर्दूकी आज अपनी स्वतंत्र हैसियत है और उसे बाहरकी मददकी जरूरत ही नहीं। थोड़ी-सी तबदीली करनेसे उर्दूलिपि शार्ट हैंडका

काम दे सकती है। राष्ट्रलिपिके तौरपर अगर पुराने बंधन निकाल दिएं जायं तो उर्दूलिपिमें ऐसा फेरफार किया जा सकता है कि बिना किसी तकलीफके उसमें संस्कृतके श्लोक लिखे जा सकें।

आखिरमें मुझे यह कहना है कि जो लोग गुस्सेमें आकर उर्दूलिपिका बहिष्कार करते हैं, वे यूनियनके मुसलमानोंकी खामखाह बेअदबी करते हैं। उनकी आंखोंमें ये मुसलमान आज अपने देशमें परदेशी हो गए हैं। यह तो पाकिस्तानके बुरे तरीकोंकी नकल करना हुआ और वह भी बढ़ा-चढ़ाकर। मेरी हर एक हिंदुस्तानीसे यह मांग है कि वह पाकिस्तानकी बुराईकी नकल करनेसे इन्कार करे। अगर मैंने जो लिखा है, उसे वे पूरी तरह समझेंगे तो हिंदी और उर्दू 'हरिजन' को बंद होनेसे बचा लेंगे। क्या मुसलमान भाई इस मौकेपर पूरे उतरेंगे ? उन्हें दो चीजें करनी हैं। उर्दू 'हरिजन' खरीदना और मेहनतसे नागरी लिपि सीखकर अपने दिल और दिमागको फायदा पहुंचाना।

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६१

लोकशाही कैसे काम करती है ?

एक माने हुए दोस्तने मुझे दो खत लिखे हैं। एकमें मुझे बिना सोचे-समझे चीजोंपरसे अंकुश हटानेके बुरे नतीजोंके

है। मुझसे अपील करनेके दिन अब चले गए। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमें हमने अहिंसाका जो जामा पहन रखा था, उसकी अब जरूरत नहीं रही। इसलिए हमें इतनी भयानक हिंसाका सामना करना पड़ रहा है। क्या आप भी उसके सामने झुक गए या आपमें भी कभी अहिंसा थी ही नहीं ? यह खत मैं इस चेतावनीके लिए नहीं लिख रहा हूं कि आप मुझे लिखकर तसवीरका अपना पहलू न बतावें; लेकिन इसका मकसद आपको यह बताना है कि मेरी अकेली आवाज सुनाई दे तो भी मैं अंकुश हटानेकी बातपर क्यों जोर देता रहूंगा।

"आपका हिंदू-मुस्लिम तंगदिलीके बारेमें लिखा खत पहले खतसे ज्यादा प्रासंगिक है। इस बारेमें भी आपको स्थितिका नरमीसे सामना करने या सस्ते आत्म-संतोषके खिलाफ खुले आम अपनी आवाज उठानी चाहिए। मैं अपना काम तो करूंगा ही, लेकिन मैं दुःखके साथ अपनी सीमाओंको मानता हूं। पहले मैं जिधर देखता था, उधर मेरा राज चलता था। आज मेरे कई साथी सत्ताधीश हो गए हैं। वह समय नहीं कि मैं अभी भी अपनेको राजा मान सकूं। अगर मैं ऐसा कर सकूं तो भी मैं उन सबसे छोटी सत्तावाला हूं। लोकशाहीके शुरुआतके दिन बेसुरे रागोंकी तरह होते हैं, जो कानोंको बुरे मालूम होते हैं और सिरदर्द पैदा करते हैं। अगर लोकशाहीको इन खा जानेवाले बेसुरे रागोंके बावजूद जिंदा रहना है तो बाहरसे बेसुरे मालूम होनेवाले कोलाहलके इस जरूरी अनुभवमेंसे सुंदर सुर और सुमेल पैदा करना ही होगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप उन महान् पुरुषोंमेंसे एक हों, जो इस बेसुरे कोलाहलमेंसे सुमेलवाले सुंदर संगीतको जन्म देनेमें हाथ बंटाएंगे।

"आप यह सोचनेकी गलती नहीं करेंगे कि अपने प्रदेशकी हालतका मुझे ज्ञान कराकर आपका अपना फर्ज खतम हो जाता है।"

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६२ :

स्वर्गीय तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नहीं थे, मगर ज्ञानी थे। भजनोंके भंडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने एकतारेसे और भजनोंसे आश्रमके लोगोंको मुग्ध कर देते थे, जैसे वे थे, वैसे ही उनकी पत्नी थीं। वह तो तोताराम-जीसे पहले ही चली गईं।

जहां बहुतसे आदमी एक साथ रहते हों, वहां कई प्रकारके झगड़े होते ही हैं। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगड़ेके कभी कारण बने हों। तोतारामजीको धरती प्यारी थीं। खेती उनका प्राण थी। आश्रममें वर्षों पहले वे आए और उसे कभी नहीं छोड़ा। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमें हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमें छुआछूतकी गंध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीतिमें उन्होंने भाग नहीं लिया था, फिर भी उनका देशप्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खड़ा रह सकता था। त्याग उनमें स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमें गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए

थे और दीनबन्धु एंड्रूज उन्हें ढूंढ लाये थे। उन्हें आश्रममें लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अंतिम घड़ीतक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लड़की अमीनाबहनने की थी।

'परोपकाराय सतां विभूतय:' (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमें अक्षरश: सच थी।

नई दिल्ली, १२-१-'४८

: ९३ :

घुड़दौड़ और बाजी बदना

घुड़दौड़के मैदानपर बाजी बदनेके सिलसिलेमें मद्रासमे एक संवाददाताका दु:खद पत्र आया है। वे लिखते हैं कि ये दोनों काम साथ-साथ चलते हैं। बाजी बदनेका काम चल पड़ता है तो घुड़दौड़ बहुधा बंद हो जाती है। घुड़दौड़की खातिर घोड़ोंकी रखवालीके लिए यह प्रथा एकदम अनावश्यक है। वहां जानेवाले लोग मनुष्यताकी बुराइयोंको पकड़ लेते हैं और अपना पैसा तथा बहुत-सी जमीन बरबाद करते हैं। घुड़दौड़ी जुएके शौकीन अच्छे लोगोंकी बरबादी मेरी ही तरह किसने नहीं देखी है? यही वक्त है जब कि हम पश्चिमके दोषोंसे मुक्ति पाकर वहांकी सर्वोत्तम देनें अपना लें।

नई दिल्ली, १२-१-'४८

: ६४ :

गुजरातके भाई-बहनोंसे

यह ख़त मैं बुधवारके बड़े सवेरे बिस्तरपर पड़ा-पड़ा लिखवा रहा हूं। आज उपवासका दूसरा दिन शुरू हुआ है। फिर भी अभी उसे शुरू हुए २४ घंटे नहीं हुए हैं। 'हरिजन' की डाक जानेका यह आंखिरी दिन है। इसलिए गुजरातियोंको दो शब्द भेजना मैं ठीक समझता हूं।

इस उपवासको मैं जैसा-तैसा नहीं मानता। मैंने बहुत विचारपूर्वक इसे शुरू किया है। फिर भी विचार उसका प्रेरक नहीं; बल्कि विचारका स्वामी राम या रहमान उसका प्रेरक है। यह उपवास किसीके सामने नहीं, या सबके सामने है। इसके पीछे न तो किसी तरहका गुस्सा है और न थोड़ी भी जल्द-बाजी। हर बातके करनेका अवसर होता है। वह अवसर चूक जानेके बाद उसे करनेमें क्या फ़ायदा? इसलिए अब विचा-रनेकी यही बात रही कि हरएक हिंदुस्तानीके लिए कुछ करना रहा या नहीं? हिंदुस्तानी कहनेमें गुजराती लोग शामिल हैं और चूंकि यह ख़त गुजराती भाषामें लिखवाया जा रहा है इसलिए यह गुजराती बोलनेवाले हर हिंदुस्तानीके लिए है।

दिल्ली हिंदुस्तानकी राजधानी है। अगर हम म हिंदुस्तानके दो विभाग न मानें, यानी हिंदू-मुसलमान मानें, तो हिंदुस्तानका जो नकशा हम अभीतक जानते हैं, उस हिंदुस्तानकी राजधानी दिल्ली आज नहीं ब हालांकि वह हमेशासे सारे हिंदुस्तानकी राजधानी र

हस्तिनापुर भी वही थी और इंद्रप्रस्थ भी वही। उनके खंडहर आज भी पड़े हैं। यह दिल्ली तो हिंदुस्तानका हृदय है। ऐसा कहनेमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि उसे सिर्फ हिंदुओं या सिक्खोंकी मानना मूर्खताकी सीमा है। यह वात भले कठोर मालूम हो, फिर भी यह शुद्ध सत्य है। इस दिल्ली-पर कन्याकुमारीसे लेकर काश्मीर तक और करांचीसे लेकर आसामके डिब्रुगढ़तक रहनेवाले और इस प्रदेशको सेवाभाव और प्रेमभावसे अपना वनानेवाले सारे हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी और यहूदियोंका हक है। इसमें वहुमत-वालोंके लिए ही जगह है या अल्पमतवालोंकी अवगणना है, ऐसा कहा ही नहीं जा सकता। जो उसका शुद्धतम सेवक है वही वड़े-से-वड़ा हकदार है। इससे मुसलमानोंको निकाल वाहर करनेवाला शख्स इस दिल्लीका पहले नंवरका दुश्मन है और इससे वह हिंदुस्तानका दुश्मन है। इस अवसरके पास हम आ रहे हैं। हरएक हिंदुस्तानीको इस कुअवसरको टालनेमें हिस्सा लेना चाहिए। यह हिस्सा किस तरह लिया जा सकता है? अगर हम पंचायती राज चाहते हैं, लोकशाही तंत्र कायम करनेका इरादा रखते हैं, तो छोटे-से-छोटा हिंदुस्तानी वड़े-से-वड़े हिंदुस्तानीके वरावर ही हिंदुस्तानका राजा है। इसके लिए उसे शुद्ध होना चाहिए। न हो तो वनना चाहिए। वह जैसा शुद्ध हो वैसा ही समझदार हो। इससे वह जातिभेद, वर्णभेदको नहीं मानेगा। सवको अपने समान समझेगा। दूसरोंको अपने प्रेमपाशमें वांधेगा। उसके लिए कोई अछूत नहीं होगा। उसी तरह मजदूर और महाजन दोनों उसके

लिए बराबर होंगे। इससे वह करोड़ों मजदूरोंकी तरह पसीनेकी रोटी कमाएगा और कलम और कड़छीको एक-सा समझेगा। इस शुभ अवसरको नजदीक लानेके लिए वह खुद भंगी बन जायगा। वह समझदार होगा, इसलिए अफीम या शराबको छुएगा ही क्यों? स्वभावसे ही वह स्वदेशी-व्रत पालेगा। अपनी पत्नीको छोड़कर वह सभी स्त्रियोंको उम्रके मुताबिक मां, बहन या लड़की मानेगा। किसीपर बुरी नजर नहीं डालेगा। मनमें भी दूसरी भावना नहीं रखेगा। जो हक उसका है, वही अपनी स्त्रीका समझेगा। वक्त आनेपर खुद मरेगा, दूसरेको कभी नहीं मारेगा और बहादुर ऐसा होगा कि गुरुओंके सिक्खोंकी तरह अकेला सवालाखके सामने अड़ा रहेगा और एक कदम भी पीछे नहीं हटेगा। ऐसा हिंदुस्तानी यह नहीं पूछेगा कि इस यत्नमें मुझे कौन-सा पार्ट अदा करना है।

नई दिल्ली, १४–१–'४८

: ६५ :

क्रोध नहीं, मोह नहीं

एक भाई लिखते हैं–

"उर्दू 'हरिजन'के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता तो मैं यही समझता कि किसीने बहुत ही क्रोधमें लिखा है। जीवणजीभाईने जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ यही साबित होता

है कि लोगोंको उर्दूलिपिमें 'हरिजन'की जरूरत नहीं है। पर आप उसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक'को क्यों बंद करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिंदी 'नवजीवन' निकालते थे (उर्दू नहीं) तब कोई गुनाह करते थे? उसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने उर्दू 'हरिजन' उस समय नहीं निकाला।

"अगर आपने उर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिंदुस्तानीका प्रचार करनेके लिए निकाले होते तो बात ठीक थी; पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। उसमें घाटा हो तो आप भले ही बंद करें। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजनसेवक' बंद करनेकी दी है, उसमें मुझे एक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अंग्रेजी 'हरिजन'से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक'ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अंग्रेजीका 'हरिजन' बंद हो जाना चाहिए। पर होता यह है कि अंग्रेजी 'हरिजन'को जितना महत्त्व मिलता है, उतना दूसरे संस्करणोंको नहीं।

"यह कितने बड़े दुःखकी बात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिंदुस्तानीमें देते हैं। उसका सारांश आपके दफ़्तरमें अंग्रेजीमें होता रहा है और फिर उसका उल्था नागरी और उर्दू 'हरिजन'में छपता था, यह कहकर कि 'अंग्रेजीसे'। अब तो यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिंदुस्तानीमें ही लिखा जाता हो।

"आपने कई वर्ष पहले लिखा था कि जहांतक संभव होगा, आप केवल गुजराती या हिंदुस्तानीमें ही लिखेंगे और उसका उल्था अंग्रेजीमें आवेगा। पहले ऐसा चला भी, लेकिन बादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अंग्रेजी 'हरिजन' बंद कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।"

जो बात वाकई सही है, वह अगर कही जाय तो उसे क्रोध मानना शब्दका सही प्रयोग नहीं होगा। क्रोधमें आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर 'उर्दू हरिजन' बंद करना पड़ा तो साथ-साथ नागरी भी बंद करना आवश्यक हो जाता है। आवश्यक बात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मैं आवश्यक समझूं, उसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि इस पत्रके लेखक, उससे मुझे क्या? हम जिसे लाजमी मानें, वही सारा जगत भी माने, ऐसा हो तो अच्छा है; लेकिन ऐसा होता नहीं है। हर चीजके कम-से-कम दो पहलू होते ही हैं।

अब यह बताना बाकी रहा कि एकको छोड़ूँ या दोनोंको। यह ठीक है कि जब मैंने नागरीमें 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया तब दोनों लिपिकी चर्चा नहीं थी। अगर थी तो मुझे उसका पता नहीं था।

बीचमें स्व० भाई जमनालालजीकी इच्छासे हिंदुस्तानी प्रचार-सभा कायम हुई। इससे उर्दू रिसाला निकालना लाजमी हो गया। अब माना कि उर्दू रिसाला बंद हो और नागरी निकलता रहे तो यह मेरी निगाहमें बड़ा ही अनुचित होगा; क्योंकि हिंदुस्तानी प्रचार-सभाकी हिंदुस्तानीके मानी यह हैं कि वह जैसी नागरी लिपिमें लिखी जाती है, वैसी ही उर्दूलिपिमें भी लिखी जा सकती है।

इसलिए जो अखबार दोनों लिपिमें निकलता था, उसे ऐसे ही निकलना चाहिए, वह भी एक ऐसे मौकेपर जब कि हिंदके लोग चारों ओरसे कह रहे हैं कि राष्ट्रभाषा हिंदी ही है और वह नागरी लिपिमें ही लिखी जाए। यह विचार

ठीक नहीं है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है तो मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं नागरी लिपिके साथ उर्दूलिपिको भी रखूं और न रख सकूं तो मुझे उर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजनसेवक' का भी त्याग करना चाहिए।

लिपियोंमें मैं सबसे आलादर्जेकी लिपि नागरीको ही मानता हूं। यह कोई छिपी बात नहीं है, यहांतक कि मैंने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमें नागरी लिपिमें गुजराती खत लिखना शुरू किया था। इसे मैं समय न मिलनेके कारण आजतक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमें भी सुधारके लिए गुंजाइश है, जैसे कि करीब-करीब सब लिपियोंमें है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह इशारा जो मैंने किया है सो यह बतानेके लिए कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमें जरा भी नहीं है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती उर्दूलिपिका विरोध करते हैं तब उसमें मुझे द्वेषकी और असहिष्णुताकी बू आती है। विरोधियोंमें इतना भी आत्मविश्वास नहीं है कि नागरी लिपि यदि संपूर्ण है—दूसरी लिपियोंके मुकाबलेमें पूर्ण है—तो उसीका साम्राज्य अंतमें होगा। इस निगाहसे देखा जाय तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिए और जरूरी भी।

हिंदुस्तानीके बारेमें मेरा पक्षपात है जरूर। मैं मानता हूं कि नागरी और उर्दूलिपिके बीच अंतमें जीत नागरी लिपिकी ही होगी। इसी तरह लिपिका ख्याल छोड़कर भाषाका ही ख्याल करें तो जीत हिंदुस्तानीकी ही होगी;

क्योंकि संस्कृतमयी हिंदी बिलकुल बनावटी है और हिंदुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। उसी तरह फारसीमयी उर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिंदुस्तानीमें फारसी शब्द बहुत कम आते हैं तो भी मेरे मुसलमान दोस्तों और पंजाबी और उत्तरके हिंदुओंने मुझे सुनाया है कि मेरी हिंदुस्तानी समझनेमें उनको दिक्कत नहीं होती। हिंदीके पक्षमें मैं तो बहुत कम दलील पाता हूं। खूबी यह है कि पहलेपहल जब हिंदी-साहित्य-सम्मेलनमें मैंने हिंदीकी व्याख्या दी तब उसका विरोध नहींके बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ इसका इतिहास बड़ा करुणाजनक है। मैं उसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैंने यहांतक बताया था कि 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिए सूचक नहीं था, न आज भी है।

लेकिन मैं साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नहीं बना था। स्व० भाई जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोंने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, उन लोगोंका मन साहित्यमें नहीं था, उनका दिल राष्ट्रभाषामें ही था और इसलिए मैंने दक्षिणमें राष्ट्रभाषाका प्रचार बड़े जोरोंसे किया।

प्रातःकालमें उपवासके छठे दिन प्रार्थनाके बाद लेटे-लेटे मैं यह लिखा रहा हूं। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताजा होते हैं, पर उन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता है।

नामका झगड़ा मुझे बिलकुल पसंद नहीं है। नाम कुछ भी हो; लेकिन काम ऐसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका कल्याण

"सारे जहांसे अच्छा हिंदोस्तां हमारा,"—इकवालके इस वचनको सुनकर किस हिंदुस्तानीका दिल नहीं उछलेगा ? अगर न उछले तो मैं उसे कमनसीव समझूंगा। इकवालके इस वचनको मैं हिंदी कहूं, हिंदुस्तानी कहूं, या उर्दू ? कौन कह सकता है कि इसमें राष्ट्रभापा नहीं भरी है, इसमें मिठास नहीं है, विचारकी वुजुर्गी नहीं है ? भले ही इस विचारके साथ आज मैं अकेला होऊं, यह साफ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिंदीकी होनेवाली नहीं है, न फारसीमयी उर्दूकी। जीत तो हिंदुस्तानीकी ही हो सकती है। जब हम अंदरूनी द्वेपभावको भूलेंगे तब हम इस वनावटी झगड़ेको भूल जायंगे, उससे शरमिंदा होंगे।

अब रही अंग्रेजी 'हरिजन'की वात। इसे मैं छोटी वात मानता हूं। अंग्रेजी 'हरिजन'को मैं छोड़ नहीं सकता; क्योंकि अंग्रेज लोग और अंग्रेजीके विद्वान हिंदुस्तानी लोग मानते हैं कि मेरी अंग्रेजीमें कुछ खूवी है। पश्चिमके साथ मेरा संवंध भी वढ़ रहा है। मुझमें अंग्रेजोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेष न कभी था, न आज है। उनका कल्याण मुझे उतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। इसलिए मेरे छोटेसे ज्ञान-भंडारमेंसे अंग्रेजी भापाका वहिष्कार कभी नहीं होगा। मैं उस भापाको भूलना नहीं चाहता, न चाहता हूं कि सारे हिंदुस्तानी अंग्रेजी भापाको छोड़ें या भूलें। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेजीको उसकी योग्य जगहसे वाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभापा नहीं वन सकती और न हमारी तालीमका जरिया। ऐसा करके हमने

अपनी भाषाओंको कंगाल बना रखा है। विद्यार्थियोंपर हमने बड़ा बोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहांतक मुझे इल्म है, सिर्फ हिंदुस्तानमें ही देखा जाता है। इस भाषाकी गुलामीने हमारे करोड़ों लोगोंको बहुतेरे ज्ञानसे बरसोंतक वंचित रखा है। इसकी हमें न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी बात? यह सब साफ-साफ जानते हुए भी मैं अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार नहीं सह सकता। जैसे तामिल आदि सूबाई भाषाएं हैं और हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा, ठीक इसी तरह अंग्रेजी विश्वभाषा है—जगतकी भाषा है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? अंग्रेजोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है; लेकिन अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य कभी नहीं जा सकता।

मुझे ऐसा लगता है कि गुजराती भाषामें या अंग्रेजी भाषामें मैं कुछ भी लिखूं तो भी अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बंधु' अपने पैरोंपर खड़े रहेंगे।

नई दिल्ली, १८-१-'४८
सुबह ५ बजकर ४५ मिनिट

: ९६ :

विचारने लायक

एक नौजवान भाई लिखते हैं:

"आज दोपहरको मुझे मालूम हुआ कि आपने उपवास शुरू किया

है। उपवासके बीच आपको तकलीफ देनेकी इच्छा नहीं हो सकती, लेकिन आज तो लिखे बिना रहा नहीं जाता।

"१. आपके उपवासके पांच-सात दिनमें हिंदू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता कायम होना संभव नहीं है। हां, ऐसी एकता पैदा हुई है, यह बतानेवाले जुलूसों और सभाओंका प्रदर्शन खूब होगा। ऐसा होना ठीक भी है; लेकिन यह सब दिली एकताका सबूत नहीं होगा। इसलिए अगर आपका उपवास छूटे तो आप इस भुलावेमें न रहें कि हिंदू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता पैदा हो गई है। कलकत्तेकी शांतिको मैं दिली एकता नहीं मानता; लेकिन आपके उपवाससे यह हो सकता है कि हिंदू अपने गुस्सेको जरा काबूमें रखकर निर्दोष मुसलमानोंको कतल न करें। मैं मानता हूं कि आपका उपवास छूटनेके लिए इतना काफी होगा।

"२. आपने अपनी तपस्यासे लोगोंके दिलोंमें अनोखा स्थान पा लिया है; लेकिन दूसरी तरफ लोगोंमें यह ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है कि शरीर मरे तो कोई चिंता नहीं, आत्मा तो अमर है। इस कारणसे लोग आपके शरीरको कमजोर और क्षीण होते देखनेके लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए आपके शरीरको बचानेके लिए लोग अपना गुस्सा और नफरत दबा देंगे। लेकिन दबा हुआ गुस्सा मौका मिलते ही फूट पड़नेवाला है। मुझे लगता है कि इसी विचारके बाद आपने देशके सामने हिंदके टुकड़े करनेके बजाय घरेलू लड़ाई पसंद करनेकी सूचना रखी होगी।

"३. अगर लोगोंके दिलोंमेंसे वैर और गुस्सा निकालना हो तो सरकारको चाहिए कि वह लोगोंको अपना जीवन रचनात्मक कार्यक्रमके ऊपर ही रचना सिखावे; लेकिन आज तो मैं अखबारोंमें देखता हूं कि थोड़े ही समयमें ६०० विदेशी ट्रैक्टर और ६००० टन या इससे ज्यादा एमोनियम सल्फेटकी खाद देशमें आनेवाली है। देशकी रक्षाके लिए देशमें उद्योग-धंधे और कारखाने खोलनेकी बातें भले हों; लेकिन जीवनको

दो ख़ास जरूरतों—खुराक और कपड़े—पर केंद्रीय उत्पादनका उसूल किसलिए लागू किया जाता है ? यह समझमें नहीं आता । जब अमेरिकाके लोग कुदरती खादकी तरफ जा रहे हैं तब हम रासायनिक खादकी शुरुआत कर रहे हैं ।

"४. मैं यह अपने अनुभवसे कहता हूं कि हिंदके मुसलमान आपको जितने निर्दोष दीखते हैं, उतने वे सचमुच हैं नहीं । और दिल्लीके मुसलमान आपको अपनी करुणाजनक हालत बतावें तो उससे आप यह न समझें कि हिंदके सारे मुसलमान या उनका बड़ा हिस्सा भी निर्दोष है और करुणा-जनक हालतमें जीता है । इससे उलटे, मुसलमानोंका बहुत बड़ा हिस्सा यह आशा करके बैठा है कि कब पाकिस्तान हिंदपर चढ़ाई करे और हम उसमें हिस्सा लें । ऐसे आदमियोंमें मैं गांवोंके अज्ञान आदमियोंकी कल्पना नहीं करता । फिर भी ये लोग आगमें सूखी लकड़ीका काम जरूर करेंगे । इसलिए मैं तो यह मानता हूं कि पाकिस्तान आज जो अपनी मर्यादा नहीं समझता, इसका कारण यह है कि उसे पूरा विश्वास है कि हिंदके मुसलमान उसीके हैं और वे आपकी हस्तीका पूरा लाभ उठाएंगे । और इसके पीछे भी स्वार्थी राष्ट्रोंकी मदद है, यह तो मैं मानता ही हूं ।

"५. इन सब विचारोंको देखते हुए मैं यह मानता हूं कि आपका उपवास हिंदुओंसे थोड़ा संयम रखनेकी ही अपेक्षा रखता है ।

"६. मैं मानता हूं कि हिंदू-मुसलमानोंका झगड़ा दो तरहसे ही शांत हो सकता है । एक तो हिंदू अगर शुद्ध हृदयके बन जायं तो—इस आशाको तो कबसे ही निष्फल हुई समझना चाहिए । आपने ही कहा है कि आजतककी कांग्रेसकी लड़ाई कमजोरोंकी अहिंसा थी, यानी जब सत्ता हाथमें आ गई है तब यह संस्था दूने जोरसे हिंसाके रास्ते ही जायगी । मौजूदा कांग्रेसी सरकारोंके लक्षण देखते हुए यह बात साबित हो सकती है । दूसरा रास्ता यही है कि हिंद-सरकार दृढ़तासे काम ले । मुझे लगता

है कि अभी वह ऐसा नहीं करती। और जिस हदतक आपके असरके परिणाम-स्वरूप इसमें ढिलाई है, उस हदतक देशका नुकसान है।"

ऊपरका खत विचारने लायक होनेके कारण यहां दिया गया है। क्षणभरमें हृदय-परिवर्त्तन होनेके उदाहरण मिल सकते हैं। यह कहना ज्यादा मौजूं है कि ऐसे परिवर्त्तन टिक नहीं सकते। उपवास छुट गया, अब यह देखना बाकी है कि इसका टिकाऊ परिणाम क्या आता है। इतना कहकर मैं ऊपरके खतमें लिखी बातोंकी कीमत कम करना नहीं चाहता। हिंदू, सिक्ख, मुसलमान सब उसमेंसे सबक ले सकते हैं। सांप्रदायिक मेल-जोल कोई नई बात नहीं है। इसकी कोशिश हमेशा चलती रही है। हिंदुस्तानकी आजादीका यह एक स्तंभ है। यह न हो तो आजादी टिक नहीं सकती। इसे स्वयं-सिद्ध बात मानना चाहिए। बीचका जो समय बीता (अगर बीत गया हो तो) वह हमारी बेहोशीका समय माना जा सकता है। इसलिए यह आशा रखी जा सकती है कि दिल्लीमें हुई एकता टिकेगी और पक्की साबित होगी।

यह बात याद रखने लायक है कि एकता टिकनेका आधार रचनात्मक कामके ऊपर रहता है। यह किस तरह हो सकता है, इसकी खोज करनी है। इस बातको माननेवाले हरएक सेवकको इसे अपने जीवनमें उतारना चाहिए और अपने पड़ो-सियोंको समझाना चाहिए। रचनात्मक कामका शास्त्र समझनेसे उसे रुचिकर बनाया जा सकता है। हम रोजाना यह अनुभव करते हैं कि मशीनकी तरह बिना समझे-बूझे नकल करनेसे यह काम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

इस विषयमें मुझे कोई शक नहीं है कि ट्रैक्टर और रासायनिक खाद नुकसानदेह हैं।

मैं यह नहीं मानता कि हिंदुस्तानके सारे मुसलमान निर्दोष हैं। मैं तो यह मानता हूं कि पाकिस्तान बन जानेसे वे यहां ऐसी मुश्किल स्थितिमें पड़ गए हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं थी। बहुसंख्यकोंको उनके प्रति शुद्ध इन्साफ करना चाहिए। अगर बहुसंख्यक जाति अपनी सत्ताके नशेमें यह माने कि अल्पसंख्यकोंको कुचला जा सकता है और वह केवल हिंदू-राज कायम करनेकी बात सोचे तो इसमें मैं बहुसंख्यकोंका और हिंदू-धर्मका नाश देखता हूं। यह वक्त ऐसा है कि जब शुभ और लगातार कोशिश करनेसे दोनोंके दिलमेंसे मैल और अज्ञान दूर हो सकते हैं।

पांचवें पैरेकी गुजराती अगर बराबर (?) पढ़नेमें आई हो तो वह कुछ अस्पष्ट मालूम होता है। चाहे जो हो, मेरा उपवास सबकी शुद्धिके लिए था। वह हिंदू, सिक्ख, मुसलमान और दूसरे सब लोगोंसे शुद्धिकी अपेक्षा रखता था और रखता है।

छठे पैरेमें सिर्फ बुद्धिवाद है। उसमें हृदयको जगह नहीं दी गई। जो बात आजादीकी लड़ाईके दरमियान नहीं हुई, वह अब हो ही नहीं सकती, ऐसा कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। अहिंसाका साम्राज्य बतानेका आज सच्चा मौका है। यह सच है कि लोग आम जनताको हथियारबंद करनेके भंवरमें फँस गए हैं। इस भंवरमेंसे थोड़े भी बच जायं तो माना जायगा कि वे बहादुरकी अहिंसाके जोरसे बचे हैं और वे हिंदके सबसे श्रेष्ठ सेवक माने जायंगे। यह बात

बुद्धिसे साबित करके नहीं बताई जा सकती। इसलिए जब-तक अनुभव न हो तबतक श्रद्धाका ही आसरा लेना होगा। श्रद्धा न हो तो अनुभव कहांसे आवे ?

स्वराजकी सरकारके लिए दृढ़तासे और हिम्मतसे काम लेनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो सरकार कमजोर है या किसीसे भी प्रेरित होकर बिना समझे काम करती है, वह सरकार हुकूमत करनेके काबिल नहीं है। उसे हटकर दूसरोंके लिए जगह खाली करनी चाहिए। मेरे असरके कारण पंडित नेहरू या सरदारमें ढिलाई आती है, ऐसा कहनेमें और माननेमें, उनके बारेमें अज्ञान दिखाई पड़ता है। मेरे स्पर्शका अगर यह असर हो तो यह मेरे लिए शर्मकी बात है और देशके लिए यह नुकसानदेह है।

नई दिल्ली, २३-१-'४८

: ९७ :

हरिजन और मंदिर-प्रवेश

एक भाई वढ़वाणसे लिखते हैं :

"हरिजन भाइयोंके मंदिर-प्रवेशके बारेमें आपको समाचार मिलते ही होंगे। आजकल हरिजन भाइयोंको ट्रस्टियोंकी मरजीसे या मरजीके खिलाफ मंदिरोंमें प्रवेश कराया जाता है। मामूली तौरपर अमुक संप्रदाय-के मंदिरोंमें—जैसे राम-मंदिरों और विष्णु संप्रदायकी हवेलियोंमें—प्रवेश करनेका आग्रह रखा जाय तो यह समझमें आने लायक बात है।

लेकिन ऐसे बहुतसे संप्रदाय हैं—जैसे स्वामीनारायण संप्रदाय, जैन संप्रदाय और दूसरे—जिनके धर्मोंको हरिजन भाई नहीं मानते। मंदिरोंमें प्रवेशके बाद वे उन धर्मोंको एकदम मानने लग जायंगे, यह मान लेना बहुत ज्यादा होगा। ऐसे मंदिरोंमें हरिजन भाइयोंको जबरन प्रवेश करानेसे क्या फायदा होगा, यह समझमें नहीं आता?"

दूसरा पत्र अहमदाबादसे आया है। उसमें दस्तखत नहीं है। आखिरमें लिखा है—"आपके पीड़ित"। अक्षर बहुत अच्छे हैं। मैं जिन हरिजनोंको पहचानता हूं, उनकी न तो यह भाषा है और न ये अक्षर। उस पत्रका खास हिस्सा जैसा है वैसा नीचे देता हूं:

"मकरसंक्रांति १४ जनवरीको थी। उस दिन हरिजनोंने मंदिरमें प्रवेश करनेकी कोशिश की।.... सवेरे आठ बजे भजन-मंडलियोंके साथ जब स्वामीनारायणके मंदिरमें पहुंचे तो वहां खंभाती ताले लगाए हुए थे।... आज भी वे वहांसे हटे नहीं हैं।... वे भजन गाया करते हैं और रात-दिन मंदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह करके बैठे रहते हैं।...कामसे कहीं जाते नहीं...शहर-समिति हरिजनोंके इस कदमकी निंदा करती है।...यह कैसी विचित्र बात है! आजादीके आनेपर भी हरिजनोंको उनके हक न मिलें तो फिर कब मिलेंगे? शहरके कांग्रेसी लोग आकर ५–१० मिनिट खड़े रहते हैं और चले जाते हैं, वे किसी तरहकी कोशिश नहीं करते।... मदद भी नहीं करते। और बेचारे हरिजन सर्दीमें मंदिरके दरवाजेपर बैठकर भजन किया करते हैं।... इसका फैसला आखिर कौन करेगा? यहांके कांग्रेसियोंमें कोई चरित्रवाला आदमी नहीं है।...डाकोरमें तो पूज्य रविशंकर महाराजने अपनी कोशिशसे हरिजनोंको दर्शन कराए।...यहां ऐसा कुछ नहीं है तो यह हक हरिजनोंको कब मिलेगा? आप बीचमें पड़ें तो कुछ असर

होगा।.. .आज ३ दिन हुए। बेचारे हरिजन सर्दी और धूपमें बैठे रहते हैं।.. .और हजारोंकी संख्यामें मंदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह कर रहे हैं।.. .उन्हें कायदेकी शरण नहीं लेनी है और नामधारी सवर्णोंका हृदय कभी पलटनेवाला नहीं।.. .तो आखिर क्या फैसला किया जाय, इस बारेमें आप कुछ रहनुमाई करेंगे ?"

पहले पत्रमें लिखनेवाले भाईने मंदिरोंके जो अलग-अलग भाग किए हैं, उसमें मुझे कोई सचाई नहीं मालूम होती। स्वामी नारायणके मंदिर, जैन मंदिर वगैरहमें हरएक हिंदू जा सकता है और जाता है। उनमें हरिजनोंको भी जाना चाहिए। यह बात सिद्ध करनेवाली हलचल बरसोंसे चलती आई है कि हरिजनों और ब्राह्मणोंके एक-से हक हैं। उसमें बहुत हद-तक सफलता मिली है। अब तो बंबई सूबेमें एक कानून बन गया है। इसलिए अब सत्याग्रहका कोई स्थान है, ऐसा मुझे नहीं लगता। जो कायदा लोकमतके अनुसार होगा, उसे स्वभावसे जनताका आदर मिलेगा। अगर कायदा लोकमतके खिलाफ होगा तो उसका अमल धीरे-धीरे होगा। लोकशाहीमें कायदेका अमल जबरन नहीं हो सकता। उसमें विवेककी जरूरत हमेशा रहती है। सुधारक समझपूर्वक कायदेकी मदद ले तो वह सफल होता है। अगर वह जल्दबाजी करता है तो कायदा बेकार साबित होता है।

ट्रस्टी मंदिरोंके मालिक नहीं होते। मंदिरका बनानेवाला भी, जब वह आम जनताके लिए उसे बनाता है, मालिक नहीं रह जाता। मंदिरोंके मालिक उसके पुजारी हैं। पुजारी वह है, जो उसमें पूजा करने या पूजाका दिखावा करने जाता है।

इस दृष्टिसे जैन-मंदिर, स्वामी नारायण-मंदिर वगैरा हिंदुओंके माने जाते हैं। इन मंदिरोंमें मैं खुद गया हूं। मुझे या मुझ-जैसे सैकड़ों आदमियोंको कोई पूछता नहीं कि तुम किस जातिके हो। हिंदू-जैसा लगूं, इतना बस है। इसलिए जहां हिंदू जायं, वहां हरिजन भी जायं। हरिजन नामकी कोई अलग जाति आज नहीं है। वह चार या अठारह वर्णोंमें शामिल है। जाग्रत लोकमत ऐसा कहता है, उसे आदर देनेवाला कानून ऐसा कहता है। उसके खिलाफ जानेवालेका मत आज नहीं चल सकता। देवमें प्राण डालनेवाले पुजारी होते हैं। वे अच्छे तो देव अच्छे।

अब दूसरे पत्रको लेता हूं। ऊपर कहे मुताबिक मेरा दृढ़ मत होते हुए भी हरिजनोंका आग्रह मेरी समझमें नहीं आता। जो हठ पकड़कर बैठे हैं, वे सच्चे भक्त नहीं हैं। उन्हें देव-दर्शनकी नहीं पड़ी है। वे हकके पीछे दौड़ते हैं और इसलिए धर्मसे दूर जाते हैं। वे लिखें, उसपर सही न करें और अपनी तरफसे दूसरेको लिखने दें। सच्चा पुजारी तो भक्त नंदनारका अनुसरण करता है। नंदनारकी पीठपर ईश्वरके सिवा दूसरा कोई नहीं था। उस नंदनारको आज अपनेको ऊंचा माननेवाले ब्राह्मण भी उत्साहसे पूजते हैं। अपनी इच्छासे हरिजन बना हुआ मैं हरिजनोंमें नंदनारको देखनेकी इच्छा रखता हूं। और उसी तरह जन्मसे माने जाने-वाले हरिजन भी इच्छा रखें। अगर गैर-हरिजन हिंदूसमाजको गरज हो तो वह हरिजन-हिंदूको इज्जतके साथ मंदिरमें ले जाय। ऐसा न हो तबतक हरिजन घर बैठे गंगा लावें

और उसमें स्नान करें। उन्हें किसी मंदिरके सामने जाकर फाका करनेकी जरूरत नहीं। इसे मैं अधर्म मानता हूं। जैसे फाकेको हिंदीमें 'धरना देना' कहते हैं, गुजरातीमें इसे लंघन करना या 'त्रागा'[1] कहते हैं। उसमें पुण्य तो नहीं, पाप ही है। ऐसे पापसे सब सौ कोस दूर रहें।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६८ :

कांग्रेसका स्थान और काम

कांग्रेस देशकी सबसे पुरानी राष्ट्रीय राजनैतिक संस्था है। उसने कई अहिंसक लड़ाइयोंके बाद आजादी हासिल की है। उसे मरने नहीं दिया जा सकता। उसका खातमा सिर्फ तभी हो सकता है, जब राष्ट्रका खातमा हो। एक जीवित संस्था या तो जीवंत प्राणीकी तरह लगातार बढ़ती रहती है, या मर जाती है। कांग्रेसने सियासी आजादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी माली आजादी, सामाजिक आजादी और नैतिक आजादी हासिल करनी है। ये आजादियां चूंकि रचनात्मक हैं, कम उत्तेजक हैं और भड़कीली नहीं हैं, इसलिए उन्हें हासिल करना राजनैतिक आजादीसे ज्यादा मुश्किल

---

[1] दूसरेको रास्तेपर लानेके लिए अपने ऊपर की जानेवाली जबरदस्ती।

है । जीवनके सारे पहलुओंको अपनेमें समा लेनेवाला रचनात्मक कार्य करोड़ों जनताके सारे अंगोंकी शक्तिको जगाता है ।

कांग्रेसको उसकी आजादीका प्रारंभिक और जरूरी हिस्सा मिल गया है; लेकिन उसकी सबसे कठिन मंजिल आना अभी बाकी है । जनतंत्रात्मक व्यवस्था कायम करनेके अपने मुश्किल मकसदतक पहुंचनेमें उसने अनिवार्य रूपसे दलबंदी करनेवाले गंदे पानीके गड़्हों-जैसे मंडल खड़े किए हैं, जिनसे घूसखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी संस्थाएं पैदा हुई हैं, जो नामकी ही लोकप्रिय और प्रजातंत्री हैं । इन सब बुराइयोंके जंगलसे बाहर कैसे निकला जाए ?

कांग्रेसको सबसे पहले अपने सदस्योंके उस विशेष रजिस्टरको अलग हटा देना चाहिए, जिसमें सदस्योंकी तादाद कभी भी एक करोड़से आगे नहीं बढ़ी और तब भी जिन्हें आसानीसे शनाख्त नहीं किया जा सकता था । उसके पास ऐसे करोड़ोंका एक अज्ञात रजिस्टर था, जो कभी उसके काममें नहीं आए । अब कांग्रेसका रजिस्टर इतना बड़ा होना चाहिए कि देशके मतदाताओंकी सूचीमें जितने मर्द और औरतोंके नाम हैं, वे सब उसमें आ जायं । कांग्रेसका काम यह देखना होना चाहिए कि कोई बनावटी नाम उसमें शामिल न हो जाय और कोई जायज नाम छूट न जाय । उसके अपने रजिस्टरमें उन देश-सेवकोंके नाम रहेंगे जो समय-समयपर उनको दिया हुआ काम करते रहेंगे ।

देशके दुर्भाग्यसे ऐसे कार्यकर्त्ता फिलहाल खास तौरपर शहरवालोंमेंसे ही लिए जायंगे, जिनमेंसे ज्यादातरको देहातोंके

लिए और देहातोंमें काम करनेकी जरूरत होगी। मगर इस श्रेणीमें ज्यादा-से-ज्यादा तादादमें देहाती लोग ही भर्ती किए जाने चाहिए।

इन सेवकोंसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे अपने-अपने हलकोंमें कानूनके मुताबिक रजिस्टरमें दर्ज किये गए मतदाता-ओंके वीच काम करके उनपर अपना प्रभाव डालेंगे और उनकी सेवा करेंगे। कई व्यक्ति और पार्टियां इन मतदाताओंको अपने पक्षमें करना चाहेंगी। जो सवसे अच्छे होंगे उन्हींकी जीत होगी। इसके सिवा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है, जिससे कांग्रेस देशमें, तेजीसे गिरती हुई अपनी अनुपम स्थितिको फिरसे हासिल कर सके। अभी कलतक कांग्रेस वेजाने देशकी सेविका थी। वह खुदाई खिदमतगार थी, भगवानकी सेविका थी। अव वह अपने आपसे और दुनियासे कहे कि वह सिर्फ भगवानकी सेविका है, न इससे ज्यादा, न कम। अगर वह सत्ता हड़पनेके व्यर्थके झगड़ोंमें पड़ती है तो एक दिन वह देखेगी कि वह कहीं नहीं है। भगवानको धन्यवाद है कि अव वह जन-सेवाके क्षेत्रकी एकमात्र स्वामिनी नहीं रही!

मैंने सिर्फ दूरका दृश्य आपके सामने रखा है। अगर मुझे वक्त मिला और स्वास्थ्य ठीक रहा तो मैं इन कालमोंमें यह चर्चा करनेकी उम्मीद करता हूं कि अपने मालिकोंकी, सारे वालिग मर्द और औरतोंकी, नजरोंमें अपनेको ऊंचा उठानेके लिए देशसेवक क्या कर सकते हैं।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६६ :

आखिरी वसीयतनामा

देशका बंटवारा होते हुए भी, हिंदकी राष्ट्रीय कांग्रेस-द्वारा तैयार किए गए साधनोंके जरिए हिंदुस्तानको आजादी मिलनेके कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेसका काम अब खत्म हुआ—यानी प्रचारके वाहन और धारासभाकी प्रवृत्ति चलानेवाले तंत्रके नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गई है। शहरों और कसबोंसे भिन्न उसके सात लाख गांवोंकी दृष्टिसे हिंदुस्तानकी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाहीके ध्येयकी तरफ हिंदुस्तानकी प्रगतिके दरमियान फौजी सत्तापर मुल्ककी सत्ताको प्रधानता देनेकी लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेसको हमें राजनैतिक पार्टियों और सांप्रदायिक संस्थाओंके साथकी गंदी होड़से बचाना चाहिए। इन और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिए हुए नियमोंके मुताबिक अपनी मौजूदा संस्थाको तोड़ने और 'लोक-सेवक-संघ'के रूपमें प्रकट होनेका निश्चय करे। जरूरतके मुताबिक इन नियमोंमें फेरफार करनेका इस संघको अधिकार रहेगा।

गांववाले या गांववालों-जैसी मनोवृत्तिवाले पांच बालिग मर्दों या औरतोंकी बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पासकी ऐसी हर दो पंचायतोंकी, उन्हींमेंसे चुने हुए एक नेताकी रहनुमाईमें, एक काम करनेवाली पार्टी बनेगी।

जब ऐसी १०० पंचायतें बन जायं तब पहले दरजेके पचास

नेता अपनेमेंसे दूसरे दरजेका एक नेता चुनें और इस तरह पहले दरजेके नेता दूसरे दरजेके नेताके मातहत काम करें। दो सौ पंचायतोंके ऐसे जोड़ कायम करना तबतक जारी रखा जाय, जबतक कि वे पूरे हिंदुस्तानको न ढंक लें। और बादमें कायम की गई पंचायतोंका हरएक समूह पहलेकी तरह दूसरे दरजेका नेता चुनता जाय। दूसरे दरजेके नेता सारे हिंदुस्तानके लिए सम्मिलित रीतिसे काम करें और अपने-अपने प्रदेशोंमें अलग-अलग काम करें। जब जरूरत महसूस हो तब दूसरे दरजेके नेता अपनेमेंसे एक मुखिया चुनें, जो चुननेवाले चाहें तबतक, सब समूहोंको व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करे।

(प्रांतों या जिलोंकी अंतिम रचना अभी तय न होनेसे सेवकोंके इस समूहको प्रांतीय या जिला समितियोंमें बांटनेकी कोशिश नहीं की गई। और किसी भी वक्त बनाए हुए समूह या समूहोंको सारे हिंदुस्तानमें काम करनेका अधिकार रहेगा। सेवकोंके इस समुदायको अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियों-से यानी सारे हिंदुस्तानकी प्रजासे मिलती है, जिसकी उन्होंने अपनी इच्छासे और होशियारीसे सेवा की है।)

(१) हरएक सेवक अपने हाथों कते हुए सूतकी या चरखा-संघद्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहननेवाला और नशीली चीजोंसे दूर रहनेवाला होना चाहिए। अगर वह हिंदू है तो उसे अपनेमेंसे और अपने परिवारमेंसे हर किस्मकी छुआछूत दूर करनी चाहिए और जातियोंके बीच एकताके, सब धर्मोंके प्रति समभावके और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुषके,

किसी भेदभावके विना सबके लिए समान अवसर और दरजेके आदर्शमें विश्वास रखनेवाला होना चाहिए।

(२) अपने कर्मक्षेत्रमें उसे हरएक गांववालेके निजी संसर्गमें रहना चाहिए।

(३) गांववालोंमेंसे वह कार्यकर्त्ता चुनेगा और उन्हें तालीम देगा। इन सबका वह रजिस्टर रखेगा।

(४) वह अपने रोजानाके कामका रेकार्ड रखेगा।

(५) वह गांवोंको इस तरह संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगोंद्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलंबी बनें।

(६) गांववालोंको वह सफाई और तंदुरुस्तीकी तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगोंको रोकनेके लिए सारे उपाय काममें लाएगा।

(७) हिंदुस्तानी तालीमी संघकी नीतिके मुताबिक नई तालीमके आधारपर वह गांववालोंकी पैदा होनेसे मरने तक सारी शिक्षाका प्रबंध करेगा।

(८) जिनके नाम मतदाताओंकी सरकारी सूचीमें न आ पाए हों, उनके नाम वह उसमें दर्ज कराएगा।

(९) जिन्होंने मत देनेके अधिकारके लिए जरूरी योग्यता अभी हासिल न की हो, उन्हें उसे हासिल करनेके लिए वह प्रोत्साहन देगा।

(१०) ऊपर बताए हुए और समय-समयपर बढ़ाए हुए मकसद पूरे करनेके लिए, योग्य फर्ज अदा करनेकी दृष्टिसे संघके द्वारा तैयार किये गए नियमोंके मुताबिक वह खुद तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ नीचेकी स्वाधीन संस्थाओंको मान्यता देगा :

(१) अखिल भारत चर्खा-संघ
(२) अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघ
(३) हिंदुस्तानी तालीमी-संघ
(४) हरिजन-सेवक-संघ
(५) गोसेवा-संघ

संघ अपना मकसद पूरा करनेके लिए गांववालोंसे और दूसरोंसे चंदा लेगा। गरीब लोगोंका पैसा इकट्ठा करनेपर खास जोर दिया जायगा।

नई दिल्ली, २९–१–'४८

: १०० :

हे राम !

नई दिल्ली, ३०–१–'४८ 1341